भगवान बुद्ध के अग्रश्रावक

महामोग्गल्लान

(ऋद्धिमानों में 'अग्र')

विपश्यना विशोधन विन्यास

भगवान बुद्ध की उद्‌घोषणा

"एतदग्गं, भिक्खवे, मम सावकानं भिक्खूनं इद्धिमन्तानं यदिदं महामोग्गल्लानो।"

"भिक्षुओ! मेरे ऋद्धिमान भिक्षु-श्रावकों में अग्र (श्रेष्ठतम) है 'महामोग्गल्लान'।"

–अङ्गुत्तरनिकाय १.१.१९०

अग्रश्रावकों के लिए तथागत की अनुशंसा

भिक्षुओ! सारिपुत्त और मोग्गल्लान की संगत करो। वे सब्रह्मचारियों पर अनुग्रह करने वाले हैं।

.....

सारिपुत्त जननी के समान हैं। मोग्गल्लान जन्मे हुए के पोषक के समान हैं।

.....

सारिपुत्त स्रोतापत्ति फल में शिक्षित करते हैं। मोग्गल्लान निर्वाण में शिक्षित करते हैं।

.....

भगवान बुद्ध के अग्रश्रावक

महामोग्गल्लान

विषयानुक्रमणिका

प्रकाशकीय [ix]

अमृत की खोज

जन्म तथा नामकरण १
धर्मचक्षु खुले १
प्रव्रज्या ५
राजपथ ७

निजी साधना के प्रसंग

तंद्रा का उत्पात ९
नौ ध्यानों का अवगाहन १२
आर्यमौन १४
साधना में सातत्य १४
आस्रवों से मुक्त कराने वाली प्रतिपदा १६
'ब्राह्मण' का 'साधना' से मेल. १७

ऋद्धिमानों में अग्र

महामोग्गल्लान की पहचान १८
कुमार सीलव की रक्षा १९
परिषद का शुद्धिकरण २०
मिथ्या-दृष्टि का उन्मूलन २२
नन्दोपनन्द-दमन २४

शिक्षा के प्रति निष्ठावान

ऋद्धि-प्रदर्शन नहीं २६
सालवन का आत्यंतिक वर्णन २७
सतिपट्ठानों की भावना २७
संक्षेप में तृष्णा के क्षय द्वारा मुक्ति २८

बेजोड़ वाग्झड़ ३१

कुछ धार्मिक प्रसंग

क्या क्या अव्याकृत है? ३२
कर्म-विपाक ३३
वेश्या का उद्धार ३५
महाश्रावक की मांग ३६
हल्ले-गुल्ले का शमन ३७
अनासक्ति-योग ३९

देवलोक के प्रसंग

त्रिरत्न में श्रद्धा से सद्गति ४३
देवताओं का संबोधि-लाभ ज्ञान ४४
सुमन का फल ४६
पुण्यवान का अभिनंदन ४८

पापेच्छ

मार को फटकार ५०
दुष्ट का संग नहीं ५०
विकट क्रोध का दुष्परिणाम ५१
गो-हत्या का दुष्फल ५२
चाहे जैसे नाम तो हुआ! ५४
संघ में फूट ५६
कोकालिक - प्रकरण ५८

गुणों की खान

ऐसे कहते भगवान ६०
अग्रश्रावकों की परस्पर स्तुति ६०
सिर पर यक्ष का प्रहार ६२
पांच प्रकार के शास्ता ६३
निष्कासन पर भी समताभाव ६५
आयुष्मान वङ्गीस की संस्तुति ६७

विविध प्रसंग

अनुकरणीय आदर्श ६८
गृहस्वामी की मुक्ति ६८
अग्गिदत्त का कल्याण ६९

परिनिर्वाण-लाभ

भव-संसरण से मुक्ति ७१
भविष्यवाणी का प्रतिफल ७५
बुद्ध को कोई शोक नहीं ७५
देहधातु ७६

परिशिष्ट ७७
आयुष्मान महामोग्गल्लान की कतिपय गाथाएं . . ७७

विपश्यना साहित्य ८१
विपश्यना साधना के केंद्र ८४

प्रकाशकीय

थेरगाथा की अट्ठकथा में भगवान बुद्ध के अस्सी 'महाश्रावकों' के नाम गिनाये गये हैं जो वर्णानुक्रम से निम्न प्रकार से हैं –

अङ्गुलिमाल, अजित, अञ्ञासिकोण्डञ्ञ, अनुरुद्ध, अस्सजि, आनन्द, उदय, उपवान, उपसिव, उपसेन, उपालि, उरुवेलकस्सप, कङ्खारेवत, कप्प, कालुदायी, किमिल, कुण्डधान, कुमारकस्सप, खदिरवनियरेवत, गयाकस्सप, गवम्पति, चूळपन्थक, जतुकण्णि, तिस्समेत्तेय्य, तोदेय्य, दब्ब, दारुचीरिय, धोतक, नदीकस्सप, नन्द (१), नन्द (२), नन्दक, नागित, नालक, पिङ्गिय, पिण्डोलभारद्वाज, पिलिन्दवच्छ, पुण्णक, पुण्णजि, पुण्ण मन्ताणिपुत्त, पुण्ण सुनापरन्तक, पोसाल, बाकुल, भगु, भद्दिय (१), भद्दिय (२), भद्रावुध, महाउदायी, महाकच्चायन, महाकप्पिन, महाकस्सप, महाकोट्ठिक, महाचुन्द, महानाम, महापन्थक, महामोग्गल्लान, मेघिय, मेत्तगू, मोघराजा, यस, यसोज, रट्ठपाल, राध, राहुल, लकुण्डकभद्दिय, वक्कलि, वङ्गीस, वप्प, विमल, सभिय, सागत, सारिपुत्त, सीवलि, सुबाहु, सुभूति, सेल, सोण कुटिकण्ण, सोण कोळिवीस, सोभित, हेमक।

इनमें अग्रश्रावक 'महामोग्गल्लान' का नाम भी है। इस पुस्तिका में इन अग्रश्रावक का संक्षिप्त जीवनवृत्तांत प्रस्तुत किया जा रहा है।

संक्षिप्त जीवनी

- महामोग्गल्लान राजगह के निकट कोलित ग्राम में उसी दिन पैदा हुए थे जिस दिन महाश्रावक सारिपुत्त। ये दोनों ही भगवान बुद्ध से कुछ बड़ी उम्र के थे।

- महामोग्गल्लान ब्राह्मण कुल के थे और इनकी माता का नाम था – मोग्गलि (मोग्गल्लानी)। इनके पिता कोलित ग्राम के मुख्य गृहपति थे।
- मोग्गल्लान और सारिपुत्त के परिवारों का पिछली सात पीढ़ी से संबंध चला आ रहा था, इसलिए बाल्यकाल से ही इन दोनों का अति घनिष्ठ संबंध रहा।
- दोनों ही परिवार खूब धनाढ्य थे। सारिपुत्त के यहां पांच सौ स्वर्णजटित पालकियां थीं और मोग्गल्लान के यहां पांच सौ गाड़ियां, जिनको सधे हुए घोड़े खींचा करते थे।
- एक दिन ये दोनों मित्र 'गिरग्गसमज्जा' (Hill-Top Festival) देखने के लिए गये। परंतु उस खेल-तमाशे की निरर्थकता का उन पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने घर-बार त्यागने का निर्णय कर इस हेतु माता-पिता की स्वीकृति प्राप्त कर ली।
- सर्वप्रथम उन्होंने परिव्राजक आचार्य संजय का शिष्यत्व ग्रहण किया परंतु वे इससे संतुष्ट नहीं हुए। तदनंतर जंबुद्वीप के अन्य विद्वानों से भी संपर्क किया परंतु संतोष प्राप्त नहीं हुआ।
- इसके बाद वे एक दूसरे से अलग होकर आचार्यों की तलाश करने लगे और आपस में यह निर्णय किया कि जो कोई कुशल-आचार्य प्राप्त करने में पहले सफल हो वह इसकी जानकारी दूसरे को तुरंत देवे।
- कुछ समय के उपरांत सारिपुत्त को राजगह में घूमते समय अस्सजि भिक्षु मिले जिनसे वे अत्यंत प्रभावित हुए। यह भिक्षु भगवान बुद्ध के अनुयायी थे और सारिपुत्त द्वारा यह पूछे जाने पर कि भगवान बुद्ध क्या सिखाते हैं, उनका क्या वाद है, तब भिक्षु अस्सजि ने जो एक गाथा कही, उससे सारिपुत्त वहीं सोतापन्न हो गये। जैसे ही उन्होंने अपने मित्र मोग्गल्लान के पास जाकर सारी बात बतायी, वे भी प्रभावित होकर सोतापन्न हो गये।

- इसके पश्चात सारिपुत्त और मोग्गल्लान अपने आचार्य संजय के पास गये और उनको भी निवेदन किया कि वे भी भगवान बुद्ध का शिष्यत्व ग्रहण करने के लिए उनके साथ चले चलें; परंतु उन्होंने इस बात को स्वीकार नहीं किया।
- तब दोनों मित्र आचार्य संजय के दो सौ पचास शिष्यों सहित भगवान बुद्ध के वेणुवन विहार में गये जहां उनको देखते ही भगवान ने घोषणा की कि ये दोनों मेरे अग्रश्रावक होंगे। तदनंतर उन सभी को उपदेश द्वारा प्रव्रजित किया। फलतः सारिपुत्त और मोग्गल्लान को छोड़कर उनके सभी दो सौ पचास सहचर अरहंत अवस्था को प्राप्त हो गये।
- तत्पश्चात मोग्गल्लान मगध के कल्लवाळपुत्त ग्राम में ध्यान करने के लिए चले गये जहां वे दीक्षा के सातवें दिन अरहंत हो गये। अरहंत होने से पहले उनको आलस एवं तंद्रा ने बहुत सताया जिनसे निपटने के भगवान बुद्ध ने विस्तृत निर्देश दिये। इनके मित्र सारिपुत्त भी दीक्षा के कुछ ही दिन बाद एक अन्य स्थान पर ध्यान करते हुए अरहंत अवस्था को प्राप्त हुए।
- भगवान ने सारिपुत्त और मोग्गल्लान को अपने आदर्श शिष्य होने की घोषणा की। सारिपुत्त की तुलना जननी से की और मोग्गल्लान की धात्री (धाय) से।
- सारिपुत्त चार आर्य-सत्यों को खूब अच्छी तरह समझा पाते थे जबकि मोग्गल्लान ऋद्धि-बल से साधकों को खूब अच्छी तरह से प्रशिक्षित कर पाते थे।
- मोग्गल्लान के ऋद्धिबलों की समय-समय पर की गयी भूरि-भूरि प्रशंसा का उल्लेख तिपिटक में मिलता है। जैसे एक समय उन्होंने मिगारमाता विसाखा के प्रासाद को अपने पांव के अँगूठे से और एक अन्य अवसर पर देवताओं के राजा इंद्र के महल वेजयन्त को कँपा दिया था। ऐसे ही

उन्होंने बक नामक ब्रह्मा की किरी मिथ्या-दृष्टि को चूर-चूर किया था, इत्यादि।

- मोग्गल्लान की ऋद्धि शक्ति का सबसे बड़ा परिचायक उदाहरण नन्दोपनन्द नाम के नागराज के गर्व को भंग करना था। इसके लिए भगवान बुद्ध ने इन्हें विशेष रूप से अधिकृत किया था क्योंकि ये चतुर्थ ध्यान में इतनी शीघ्रता से प्रवेश कर पाते थे जैसा कोई अन्य श्रावक नहीं कर सकता था।
- भले ही मोग्गल्लान ऋद्धिशक्ति में अप्रतिम थे, तो भी प्रज्ञा में वे सारिपुत्त से दूसरे स्थान पर ही थे। ये दोनों साधकों के प्रश्नों का जैसा उत्तर दे पाते थे वैसा अन्य श्रावकों के लिए संभव नहीं होता था।
- भगवान बुद्ध मोग्गल्लान को धर्मोपदेश देने के लिए सर्वथा उपयुक्त समझते थे। ऐसे अनेक प्रसंग हैं जिनमें उन्होंने मोग्गल्लान को धर्मोपदेश देने के लिए विशेष रूप से अधिकृत किया। जैसे – कपिलवस्तु के नये संस्थागार में आधी रात तक स्वयं धर्मोपदेश देकर बाद में भिक्षुओं को धर्मोपदेश देने के लिए मोग्गल्लान को अधिकृत किया और अंत में उनके उपदेश की भूरि-भूरि प्रशंसा की। जब भगवान बुद्ध तावतिंस देवलोक में अभिधम्म का उपदेश देने के लिए गये तब अपने पीछे लोगों को धर्मोपदेश देने के लिए उन्होंने मोग्गल्लान को अधिकृत किया था।
- देवदत्त द्वारा भिक्षु-संघ को फोड़कर पांच सौ नये प्रव्रजित भिक्षुओं को अपने साथ गयासीस के पास ले जाने पर भगवान के निर्देश पर सारिपुत्त और मोग्गल्लान ने उन्हें अपने धर्मोपदेश द्वारा वहां से वापिस संघ में लाने के कार्य में सफलता प्राप्त की। यह एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण घटना थी जिसका श्रेय इन्हीं दो अग्रश्रावकों को जाता है।
- मोग्गल्लान का देवलोक में आना-जाना लगा रहता था और उनके वहां आते-जाते रहने से देवगण बहुत प्रसन्न हुआ करते थे।

- सारिपुत्त और महामोग्गल्लान में पारस्परिक स्नेह इतना अधिक था कि इसकी जितनी प्रशंसा की जाय, कम है।
- सारिपुत्त तथा महामोग्गल्लान दोनों ही भगवान बुद्ध से पहले परिनिर्वाण को प्राप्त हुए। उस समय उन दोनों की आयु ८४ वर्ष थी। सारिपुत्त का परिनिर्वाण उनके अपने जन्म-स्थान पर ही हुआ। महामोग्गल्लान को कालसिला नामक स्थान पर चोरों ने पकड़कर उनकी हड्डियों को इस तरह चूर किया, जैसे पिसा हुआ चावल का कण। इन चोरों को निगंठों ने इस काम के लिए नियोजित किया था। उनकी धारणा थी कि भगवान बुद्ध की शिक्षा का व्यापक प्रसार महामोग्गल्लान के सहयोग के कारण ही हो रहा है। परंतु चोरों द्वारा हड्डियां चूर-चूर कर दिये जाने पर भी महामोग्गल्लान में अभी प्राण शेष था और परिनिर्वाण-लाभ करने के पहले वे अपने ऋद्धिबल से भगवान बुद्ध से मिल पाये।
- अनेक जातक कथाओं में भी बोधिसत्त्व के रूप में भगवान गौतम बुद्ध से और आयुष्मान सारिपुत्त तथा भिक्षु आनन्द से मोग्गल्लान का पूर्व-संबंध अनेकों जन्मों में पाया जाता है।

इसी प्रकार से अन्य महाश्रावकों के जीवनवृत्तांत भी प्रकाशित करने की योजना है जिससे विपश्यी साधक एवं साधिकाएं उनसे प्रेरणा पाकर अपने जीवन का यत्किंचित परिष्कार कर सकें।

विपश्यना विशोधन विन्यास

अमृत की खोज

जन्म तथा नामकरण

राजगीर (राजगह) के निकट उपतिस्स और कोलित नामक दो गांवों में भगवान गौतम बुद्ध के जन्म के पूर्व उनके दोनों अग्रश्रावक एक ही दिन और एक ही समय जन्मे। दोनों पड़ोसी गांव थे। अपनी-अपनी मां के गर्भ में भी ये दोनों श्रावक एक ही दिन आये। उक्त दोनों गांव ब्राह्मणों के थे। उनके माता-पिता काफी समृद्ध थे, करोड़ों के स्वामी थे। जीवन सुखमय था। उपतिस्स ग्राम में जन्मने के कारण एक का नाम उपतिस्स पड़ा, जो कालांतर में सारिपुत्त के नाम से विख्यात हुआ। दूसरे का नाम कोलित रखा गया, जो कोलित नामक ग्राम में पैदा हुआ था। कोलित का कौटुंबिक नाम सिरिवड्ढन था, जो उपतिस्स के पूर्वजों की ही तरह धनाढ्य गृहस्थ थे। कालक्रम में यह महामोग्गल्लान नाम से प्रसिद्ध हुआ। कोलित की मां मोग्गलि (मोग्गल्लानी) नाम से जानी जाती थी। जब वह कुमारी थी तब प्रायः उलटी किया करती। इसलिए, उसके मां-बाप उसे सचेत करते 'उलटी न करो' – उगलो नहीं (मा+उग्गलि=मोग्गलि)। इस प्रकार मोग्गलि का पुत्र होने के कारण वह मोग्गल्लान नाम से जाना गया और अपने महान गुणों के कारण लोक में 'महामोग्गल्लान' नाम से विश्रुत हुआ।

धर्मचक्षु खुले

दोनों बालक उपतिस्स और कोलित प्राप्त वयस्क होते हुए सब प्रकार की कलाओं में पारंगत हुए। पड़ोस के गांव, एक ही दिन का जन्म, ब्राह्मण परिवार, धनाढ्य कुल आदि अनेक बातों में समानता होने के कारण उनमें सहज ही मित्रता का भाव निपजा। पहले से ही दोनों परिवारों के पारस्परिक संबंध सात पीढ़ियों से अच्छे थे। ये दोनों बचपन में साथ-साथ रहते, खेलते-कूदते, विद्याध्ययन करते और साथ-साथ शिल्प भी सीखते। कुमार उपतिस्स के खेलने के लिए नदी या उद्यान जाते समय उसके साथ पांच सौ

सोने की शिविकाएं (पालकियां) रहतीं और कुमार कोलित के साथ पांच सौ अश्वरथ। दोनों बालकों के साथ पांच सौ, पांच सौ तरुण सहायक रहते थे। राजगीर में हर साल पहाड़ का उत्सव चलता था। दोनों एक ही मंच पर बैठते थे। एक साथ बैठकर उत्सव को देखते हुए हँसने के संदर्भ में हँसते थे, संविग्न स्थिति में संविग्न होते थे, दान देने के लिए युक्त परिस्थिति में दान देते थे। इस प्रकार त्यौहार देखते-देखते एक दिन, ज्ञान के परिपाक के कारण, पहले दिनों की भांति, हँसने की परिस्थिति में हँसना अथवा संविग्न स्थिति में संविग्न होना अथवा दान देने के संदर्भ में दान देना नहीं हुआ। दोनों ही इस तरह चिंतामग्न होकर बैठे थे – "यहां देखने के लिए क्या है? एक सौ साल पहुँचने के पहले ही इनका नामोनिशान नहीं रहेगा। हमें मुक्ति का उपाय ढूंढ़ना चाहिए।"

एक दिन जब वे दोनों पहाड़ पर हो रहा कोई आकर्षक उत्सव देख रहे थे तब कोलित ने उपतिस्स से कहा – "मित्र, उपतिस्स, तुम तो दूसरे दिनों की भाँति खुश नहीं हो, असंतुष्ट हो। क्या सोच रहे हो?" "मित्र कोलित, इन्हें देखने में सार नहीं, यह निरर्थक है, अपनी मुक्ति का उपाय खोजना चाहिए – यही सोचते बैठा हूं। तुम क्यों असंतुष्ट हो?" उसने भी उसी तरह कहा। उपतिस्स ने कहा – "हम दोनों का इरादा भला है। मोक्षमार्ग को खोजने हेतु हमें प्रव्रज्या ग्रहण करनी चाहिए। किसके साथ प्रव्रजित होंगे?"

उस समय संजय नामक परिव्राजक राजगीर में बड़े परिव्राजक समुदाय के साथ रहता था। उपतिस्स और कोलित ने प्रव्रज्या हेतु अपने माता-पिता से अनुमति प्राप्त की। तदनंतर एक शिविका से और दूसरा रथ से गणाचार्य वेलट्ठपुत्त संजय के पास गये, उनसे प्रव्रज्या ग्रहण की और अपने साथ आये पाँच सौ तरुण सहायकों को शिविकाओं और रथों को लेकर वापस चले जाने की आज्ञा देकर संजय के आश्रम में रहने लगे।

गणाचार्य संजय बहुत ही अस्थिर मत वाला आचार्य था। वह कर्म और कर्मफल को, लोक और परलोक को न स्वीकारता था और न ही नकारता था। उसकी कोई निश्चित मान्यता नहीं थी। न तो वह नास्तिकता का

समर्थन करता था, न आस्तिकता का। आश्चर्य होता है कि कोई स्थिर मत न होने पर भी उसके अनेक भक्त-अनुयायी थे। यद्यपि गणाचार्य संजय के आश्रम में ढाई सौ शिष्य थे, फिर भी सत्य की खोज के प्रति जैसी लगन उपतिस्स और कोलित के भीतर थी वैसी और किसी के भी मन में नहीं थी। आचार्य संजय के सिद्धांत से वे संतुष्ट नहीं थे। लिहाजा वे अन्य साधु-संतों और ब्राह्मणों से भी मिलने-जुलने लगे।

उन्होंने आपस में यह प्रतिज्ञा की कि दोनों में जो भी पहले अमृत (सत्य) का आस्वादन करेगा वह दूसरे को अवश्य ही चखायेगा (बतायेगा)।

इस तरह उपतिस्स और कोलित मुक्तिमार्ग की खोज में अलग-अलग विचरण करने लगे। उस समय शास्ता राजगीर के वेळुवन में विहार करते थे। तब "भिक्षुओ, चलो बहुजनों के हित के लिए चारिका (यात्रा) करो" के अनुसार त्रिरत्न के गुण के प्रकाशन के लिए भेजे गये इकसठ अर्हतों के बीच में से पंचवर्गीय* भिक्षुओं में अस्सजि (अश्वजित) लौटकर राजगीर आये और दूसरे दिन सुबह भिक्षापात्र और चीवर लेकर भिक्षाटन के लिए राजगीर में प्रवेश किया।

उस दिन परिव्राजक उपतिस्स (सारिपुत्त) ने राजगीर की राजनगरी में आयुष्मान अस्सजि को भिक्षाटन करते देखा। वह उनकी संयत चाल-ढाल, नीची नजर और सु-आच्छादित चीवर, शांति और कांतियुक्त चेहरे को देख कर अत्यंत प्रभावित हो उनकी ओर आकर्षित हुआ। उसे लगा कि ये या तो अरहंत हैं या अरहंत-मार्ग पर आरूढ़ हैं। अधिक परिचय प्राप्त करने की तीव्र उत्कंठा लिए हुए सारिपुत्त उनके पीछे हो लिया। भिक्षाचारिका पूरी हुई। भिक्षु अस्सजि जहां एकांत में आहार लेने के लिए बैठे, वहां उनके सामने आ, नमस्कार कर उनसे पूछा कि आपके चेहरे की इंद्रियां अत्यंत शुद्ध और

---

* **पंचवर्गीय भिक्षुः** इसिपतन (सारनाथ) में भगवान गौतम बुद्ध के सम्यक संबोधि प्राप्त करने के अनंतर उनका प्रथम उपदेश ग्रहण करने वाले पांच भिक्षु, जिनके नाम थे – अञ्ञाकोण्डञ्ञ, भद्दिय, वप्प, अस्सजि और महानाम।

शांत हैं। आपके आचार्य कौन हैं? आप किसके सिखाये धर्म का आचरण कर रहे हैं? उनका क्या वाद है?

अस्सजि ने बताया कि वे शाक्यकुल से प्रव्रजित हुए भगवान गौतम बुद्ध के शिष्य हैं और उन्हीं के बताये धर्म का पालन करते हैं।

जब सारिपुत्त ने उनसे भगवान के मत के बारे में पूछा तब अस्सजि ने कहा – "आवुस! मैं इस धर्म में अभी नया-नया प्रव्रजित हुआ हूं, विस्तार से तुम्हें नहीं बतला सकता, इसलिए संक्षेप में कहता हूं"।

तब सारिपुत्त परिव्राजक ने आयुष्मान अस्सजि से कहा – "अच्छा आवुस! थोड़ा बहुत जो हो कहो, सार को ही मुझे बतलाओ। सार से ही मुझे प्रयोजन है"।

तब आयुष्मान अस्सजि ने सारिपुत्त को संक्षेप में यों बताया –

ये धम्मा हेतुप्पभवा, तेसं हेतुं तथागतो आह।
तेसञ्च यो निरोधो, एवंवादी महासमणो॥

– महावग्ग, विनयपिटक, ६० सारिपुत्तमोग्गल्लानपव्वज्जाकथा

[जो कुछ कारणों से उत्पन्न होता है, उसका कारण तथागत बताते हैं और उसका जो निरोध है, उसे भी। महाश्रमण का यही वाद है, यही कथन है, यही शिक्षा है।]

भगवान बुद्ध का कोई दार्शनिक वाद या मत तो था नहीं। वे तो व्यावहारिक शास्ता थे। परिव्राजक सारिपुत्त विपुल पुण्य-पारमी का धनी था। उसे तुरंत समझ में आ गया कि संसार में जो भी दुःख है, वह बिना कारण उत्पन्न नहीं होता। भगवान उसकी उत्पत्ति का मूल कारण बताते हैं और यही नहीं, उसके निरोध की, यानी नितांत उन्मूलन की, साधना बताते हैं। इसी की तो भूख थी, इसी की तो खोज थी उसे। वाद-विवाद बढ़ाने वाली मत-मतांतरीय मान्यताएं किस काम की? अर्थपूर्ण शिक्षा तो यही थी और इस शिक्षा के शुभफल का एक अत्यंत आकर्षक और आदर्श उदाहरण उसके सामने था। सारिपुत्त को समझते देर नहीं लगी। यह गाथा सुन कर

उसका मन प्रीति-सुख से भर गया। उसके भीतर अनित्यबोधिनी विपस्सना जाग उठी। उसके विरज-विमल धर्म-चक्षु खुल गये, जिससे उसने अनुभव कर लिया कि –

यं किञ्चि समुदयधम्मं, सब्बं तं निरोधधम्मन्ति।

– महावग्ग, विनयपिटक, ६० सारिपुत्तमोग्गल्लानपव्वज्जाकथा

[जो कुछ उत्पत्तिधर्मा है, वह सब निरोधधर्मा है।]

इस प्रकार निरोध-निर्वाण, अर्थात अमृत, का अनुभव कर सारिपुत्त सोतापन्न हुए। वे प्रसन्न-चित्त हो, अपने मित्र महामोग्गल्लान के पास गये। उन्हें सारी आप-बीती कह सुनायी। महामोग्गल्लान भी विपुल पुण्य-पारमी के धनी थे। सुनते-सुनते उनके भी धर्म-चक्षु खुले, उन्होंने भी अमृत का पान किया और सोतापन्न हुए।

प्रव्रज्या

मोग्गल्लान ने कहा, "आयुष्मान, कितना विशुद्ध धर्म है भगवान का! हम लोग अब तक भ्रम में पड़े भटक रहे थे।"

"हां, अब हम भगवान के पास चलें, वही हमारे गुरु हैं", दोनों ने निश्चय किया। दोनों परिव्राजक भगवान के पास जाने के लिए उद्यत हो गये। आचार्य के प्रति कृतज्ञता का भाव होने के कारण पहले वे अपने पूर्वगुरु गणाचार्य संजय परिव्राजक से मिलने चल पड़े। उन्होंने सोचा कि जो निर्मल धर्म प्राप्त हुआ है वह बड़ा ही कल्याणकारी है, उसके बारे में आचार्य को बतायें। इसकी गहराई को समझ कर कदाचित वे भी श्रद्धापूर्वक भगवान के पास चलें। उन भगवान से धर्मोपदेश सुनकर आचार्य भी मार्गफल में प्रतिष्ठित हो सकेंगे। पर आचार्य के पास जाने के पहले कोलित और उपतिस्स दोनों, उनके ढाई सौ संन्यासी शिष्यों के पास पहुँचे। उनसे भिक्षु अस्सजि के बारे में और तथागत के धर्म से संबंधित सभी बातें बतायीं। सब कुछ सुनकर सारे शिष्य उनके साथ चलने के लिए सहमत हो गये। उन्होंने कहा, "आयुष्मानो, हमलोग आपके साथ आश्रम में रहते हैं।

यदि आपलोग महाश्रमण गौतम के शिष्य होंगे तो हमलोग भी आपका अनुसरण करेंगे।"

शिष्यों की सहमति पा कर दोनों तपस्वी अपने गुरु संजय परिव्राजक के पास पहुँचे। उन्हें अपना निश्चय सुनाया, "आचार्य, लोक में सम्यक संबुद्ध उत्पन्न हुए हैं। वे हमारे गुरु हैं। हम लोग उन भगवान के पास जा रहे हैं। उनका धर्म सचमुच कल्याणकारी एवं मंगलकारी है। आपसे अनुरोध है कि आप भी चलें।"

आचार्य संजय ने उन्हें ही रुक जाने का परामर्श देते हुए कहा कि मैं नहीं जा सकता। इतने वर्षों से मैं स्वयं गणाचार्य रहा हूं। और मेरे इतने अधिक शिष्य हैं। यदि मैं स्वयं फिर किसी का शिष्य बन जाऊं तो यह मेरे लिए उचित नहीं होगा। इसलिए तुम्हारे साथ मेरा जाना नहीं हो सकता।

इस प्रकार उपतिस्स और कोलित द्वारा तीन बार जाने की बात कहना, पर तीनों बार परिव्राजक संजय द्वारा मना किये जाने पर भी वे नहीं रुके। "हम चलते हैं," ऐसा कहते हुए पूरे ढाई सौ शिष्यों के साथ सारिपुत्त और मोग्गल्लान वेळुवन की ओर, जहां भगवान विहार करते थे, चले गये। इतने सारे शिष्यों सहित दोनों प्रमुख परिव्राजकों के चले जाने पर परिव्राजक संजय का आचार्य-कुल लगभग छिन्न-भिन्न हो गया। इससे उन्हें जबरदस्त आघात लगा। और उनके मुँह से गर्म रक्त का स्राव होने लगा।

भगवान ने दूर से ही सारिपुत्त और मोग्गल्लान को आते हुए देख भिक्षुओं को संबोधित किया – "भिक्षुओ! दो मित्र कोलित (मोग्गल्लान) और उपतिस्स (सारिपुत्त) यहां आ रहे हैं। ये दोनों मेरे प्रधान शिष्य होंगे। अपने समस्त विकारों को भस्म कर ये गंभीर एवं अनुपम ज्ञानी, अनास्रव और मुक्त हो दुर्लभ निर्वाण को प्राप्त होंगे।'

सारिपुत्त और महामोग्गल्लान, दोनों ही शास्ता के चरणों में सिर नवा कर बोले, "भंते, भगवान हमें प्रव्रज्या दें, उपसंपदा दें।'

भगवान ने कहा – "भिक्षुओ, आओ (यह) धर्म सु-आख्यात है, इसमें कुछ भी गोपनीय नहीं। यह मार्ग सत्य का है। विकारों और दुःखों के क्षय के लिए ब्रह्मचर्य का आचरण करो।

"यही तुम्हारी प्रव्रज्या है, यही तुम्हारी उपसंपदा है।" भगवान के निर्देश पर अत्यंत हर्ष एवं श्रद्धापूर्वक वे साधना में जुट गये।

राजपथ

ध्यान की अवस्था में दिये गये भगवान के प्रेरक प्रसंगों ने मोग्गल्लान का बड़ा ही कल्याण किया। उनके अंदर प्रभूत धर्म-संवेग जागा। मन की चंचलता और शरीर की जड़ता जाती रही। वह अत्यंत उत्साह और शक्ति के साथ साधना में जुट गये। आर्य-मौन धारण किये भिक्षा के लिए निकलते। जो कुछ भिक्षा-पात्र में मिल जाता उसे खाकर संतुष्ट रहते। भगवान द्वारा बताये गये उपायों का प्रयोग कर वह निरंतर ध्यान में विहार करते। बाद में भिक्षा के लिए घूमना भी बंद कर दिया। अरण्य में वृक्ष-तले सतत ध्यान में रहते हुए भिक्षा-पात्र में जो कुछ भी पा जाते उसी से प्रसन्न और संतुष्ट रहते। इस प्रसन्नता और संतुष्टि से उनको मन और शरीर – दोनों स्तरों पर इतना बल मिला कि मार सेना को पराजित करने में वे सक्षम हुए।

शरीर के प्रति मोग्गल्लान की आसक्ति जाती रही। उन्हें इस बात का बोध होने लगा कि यह शरीर केवल दुर्गंधयुक्त पदार्थों से भरा पड़ा है। चमड़े से ढँकी नव द्वारों वाली यह काया केवल विष्ठा का भंडार है। सजे-सँवरे वस्त्र, मुख-मंडल, केशविन्यास, आँखें, पूरा शरीर – ये सब-के-सब पापचित्त को आकर्षित करने वाले हैं। इनके प्रति रंचमात्र भी लगाव संसार-चक्र से बाहर नहीं निकलने देता। उन्हें लगने लगा कि यह सब शिकारी द्वारा बिखेरा गया चारा है। मनुष्य चारा देख लेता है, पर उसे फँसाने वाला जाल नहीं सूझता। लेकिन महामोग्गल्लान उस स्तर से काफी ऊंचाई पर पहुँच गये थे। वह जाल में फँसने वाले मृग नहीं रहे। संस्कारों की निःसारता का उन्हें बोध होने लगा। इस बात की सच्ची अनुभूति होने लगी कि जो कुछ उत्पन्न होता है वह सब नष्ट भी हो जाता है। सभी संस्कार अनित्य हैं, परिवर्तनशील हैं,

नश्वर है, भंगुर है। कुछ भी शाश्वत नहीं। 'मैं', 'मेरा' और 'मेरी आत्मा' किसी का अस्तित्व नहीं। प्रव्रज्या-प्राप्ति के सातवें दिन महामोग्गल्लान सभी विकारों से मुक्त हो गये। पराक्रमपूर्वक विपस्सना भावना करते हुए वे सभी संवेदनाओं का निरोध देखने लगे। इस प्रकार सात ही दिनों में उनके सभी संयोजन क्षीण हो गये। अंतिम तीन फलों में प्रतिष्ठित होकर वह अर्हत्त्व को प्राप्त हुए। उसी क्षण वह श्रावक पारमिता ज्ञान की पराकाष्ठा में प्रतिष्ठित हुए और ऋद्धिबल में प्रौढ़ता प्राप्त की।

निजी साधना के प्रसंग

तंद्रा का उत्पात

ऐसा लगता है कि आचार्य संजय परिव्राजक के आश्रम में साधना की कोई व्यवस्थित विधि विकसित नहीं हुई थी। पर भगवान की शरण में आने पर उनके शिष्यों को विपस्सना भावना की पूर्ण वैज्ञानिक एवं विकसित पद्धति में पकना पड़ता था। शास्ता स्वयं भी साधकों की पूरी देख-रेख करते थे।

उपसंपदा ग्रहण करने के उपरांत आयुष्मान महामोग्गल्लान मगध राज्य के कल्लवालपुत्त ग्राम में जाकर साधना में जुट गये। पर जैसा प्रायः होता है, जब नया-नया साधक ध्यान के लिए बैठता है, तब उसका चित्त एकाग्र नहीं होता। उसे आलस्य, निद्रा-तंद्रा आदि घेर लेते हैं। ठीक ऐसा ही आयुष्मान महामोग्गल्लान के साथ भी हुआ। साधना के शत्रु या कहें कि बाधक तत्त्व उनके ध्यान में बाधा पहुँचाने लगे और उनका मन इधर-उधर भटकने लगा। भगवान ने अपनी दिव्य दृष्टि से भिक्षु की यह अवस्था देख ली। वह भिक्षु जो कालांतर में भगवान का अग्रश्रावक होने वाला है उसे शास्ता अनदेखा कैसे छोड़ सकते थे? उसे सजग करने के लिए अपने ऋद्धि-बल से तथागत उसके पास जा पहुँचे।

भगवान ने आयुष्मान महामोग्गल्लान को यह कहा – "मोग्गल्लान, तू ऊंघ रहा है न?"

"हां, भंते!"

इस पर उसका पथ-प्रदर्शन करने हेतु भगवान ने निम्न उपाय बताये –

- "हे मोग्गल्लान, मन के जिस संज्ञा से जुड़ने पर तंद्रा आती हो, उस संज्ञा को बार-बार मन में न ला। इसकी गुंजाइश है कि ऐसा करने से तंद्रा दूर हो जाय।

- "यदि इस प्रकार विहार करने से भी वह तंद्रा दूर न हो, तो हे मोग्गल्लान! तूने जैसे सुना है, जैसे कंठस्थ किया है, उसी के अनुसार उस धर्म पर तर्क-वितर्क कर, विचार कर, मन से मनन कर। इसकी गुंजाइश है कि ऐसा करने से तंद्रा दूर हो जाय।

- "यदि इस प्रकार विहार करने से भी वह तंद्रा दूर न हो, तो हे मोग्गल्लान! तूने जैसे सुना है, जैसे कंठस्थ किया है, उसी के अनुसार उस धर्म का विस्तार से पाठ कर। इसकी गुंजाइश है कि ऐसा करने से तंद्रा दूर हो जाय।

- "यदि इस प्रकार विहार करने से भी वह तंद्रा दूर न हो, तो हे मोग्गल्लान! तू दोनों कानों को रगड़ दे, हाथ से शरीर को मल। इसकी गुंजाइश है कि ऐसा करने से तंद्रा दूर हो जाय।

- "यदि इस प्रकार विहार करने से भी वह तंद्रा दूर न हो, तो हे मोग्गल्लान! तू आसन से उठ, आंखों पर पानी के छींटे मार, (चारों) दिशाओं की ओर देख, तारागण-नक्षत्रों को देख। इसकी गुंजाइश है कि ऐसा करने से तंद्रा दूर हो जाय।

- "यदि इस प्रकार विहार करने से भी वह तंद्रा दूर न हो, तो हे मोग्गल्लान! तू आलोक (प्रकाश) संज्ञा को मन में स्थान दे। ऐसा समझ कि दिन है – जैसा दिन वैसी ही रात को समझ, जैसी रात वैसा ही दिन को समझ। इस प्रकार विवृत आवरणरहित चित्त से प्रभास्वर चित्त की भावना कर। इसकी गुंजाइश है कि ऐसा करने से तंद्रा दूर हो जाय।

- "यदि इस प्रकार विहार करने से भी वह तंद्रा दूर न हो, तो हे मोग्गल्लान! तू इंद्रियों को भीतर संयत कर, चित्त को बाहर न जाने देकर, आगे-पीछे का ख्याल कर चंक्रमण कर। इसकी गुंजाइश है कि ऐसा करने से तंद्रा दूर हो जाय।

- "यदि इस प्रकार विहार करने से भी वह तंद्रा दूर न हो, तो हे मोग्गल्लान! तू पांव पर पांव रख, स्मृति तथा संप्रज्ञान युक्त हो, उठने के संकल्प को मन में जगह देकर दाहिनी करवट लेट जा। हे मोग्गल्लान! तुझे प्रबुद्ध रहकर शीघ्र ही उठ जाना होगा – शय्या सुख, करवट लेटने का सुख, तंद्रा-युक्त रहने का सुख अनुभव नहीं करना होगा। हे मोग्गल्लान! तुझे इसी प्रकार सीखना चाहिए।

.....

"हे मोग्गल्लान! तुझे इस प्रकार भी सीखना चाहिए – मैं अभिमान की भावना लेकर गृहस्थ-कुलों में आना-जाना नहीं करूंगा। यदि भिक्षु ऐसी भावना लेकर गृहस्थ-कुलों में आना-जाना करता है, तो हे मोग्गल्लान! गृहस्थ-कुलों के बहुत से काम-काज होते हैं, जिनमें व्यस्त रहने के कारण गृहस्थ आने वाले भिक्षु की ओर ध्यान नहीं दे पाते। तब भिक्षु के मन में होता है – किसने इन गृहस्थ-कुलों के मन में मेरे प्रति दुराव पैदा कर दिया है। लोग मेरे प्रति विरक्त हो गये हैं। इस प्रकार स्वागत-लाभ न होने पर निस्तेज होना, निस्तेज होने पर उद्धत होना, उद्धत होने पर असंयत होना हो ही जाता है और असंयत का चित्त समाधि से दूर हो जाता है।"

.....

"हे मोग्गल्लान! तुझे इस प्रकार भी सीखना चाहिए – मैं विग्रह की बातचीत नहीं करूंगा। विग्रह-विवाद होने पर बात बहुत बढ़ जाती है। बात बढ़ने पर उद्धतता बढ़ जाती है। उद्धतता से संयम छूट जाता है। असंयत का चित्त समाधि से दूर रहता है।"

.....

"मोग्गल्लान, मैं सारे संसर्गों की प्रशंसा नहीं करता। और न ही सारे संसर्गों की निंदा करता हूं। मैं प्रव्रजितों का गृहस्थों के संसर्ग में रहना ही अप्रशंसनीय कहता हूं। परंतु जो ऐसे निवास-स्थान हैं, जहां कोलाहल और

हल्ला-गुल्ला नहीं है, जो निर्जन हैं, अ-जनाकीर्ण हैं, तथा जो ध्यान में संलीन हो सकने के लिए उपयुक्त हैं, ऐसे निवास-स्थानों पर साथ रहने की मैं प्रशंसा करता हूं।"

लक्ष्य है ध्यान-साधना में निपुण होना। इस लक्ष्य की पूर्ति में जो भी बाधक हो वह स्वीकार्य नहीं है; और जो भी साधक हो वह स्वीकार्य है।

नौ ध्यानों का अवगाहन

एक समय आयुष्मान महामोग्गल्लान श्रावस्ती (सावत्थी) के जेतवन में विहार करते थे। उन्हीं दिनों एक अवसर पर उन्होंने भिक्षुओं को अपने पास बुलाकर साधना के बारे में अपने अनुभव सुनाये जिसका सारांश निम्नलिखित है –

(१) **प्रथम ध्यान** – मैंने कामभोगों एवं अकुशल धर्मों से दूर रहकर वितर्क, विचार सहित विवेकजन्य, प्रीति सुखमय साधना आरंभ की। ऐसा करते हुए मन में काम-सहगत संज्ञाएं आने पर मैंने उन्हें दूर भगाया।

(२) **द्वितीय ध्यान** – वितर्क एवं विचारों के शांत हो जाने पर, आध्यात्मिक प्रसाद से युक्त होकर, चित्त को एकाग्र करने वाली साधना आरंभ की। ऐसा करते हुए मन में वितर्क-सहगत संज्ञाएं आने पर मैंने उन्हें दूर भगाया।

(३) **तृतीय ध्यान** – प्रीति से विरक्त होकर मैंने उपेक्षापूर्वक साधना आरंभ की और स्मृतिमान तथा संप्रज्ञ होकर शरीर से सुख (सुखद संवेदनाओं) का अनुभव किया। इसके विषय में पंडितजन कहते हैं – 'यह स्मृतिमान होकर उपेक्षापूर्वक साधना कर रहा है'। मन में प्रीति-सहगत संज्ञाएं आने पर मैंने उन्हें दूर भगाया।

(४) **चतुर्थ ध्यान** – तब मैंने सुख, दुःख के प्रहाण से पूर्व ही सौमनस्य एवं दौर्मनस्य के अस्त हो जाने के कारण अदुःख-असुखमय उपेक्षा एवं स्मृति-परिशुद्धि के साथ साधना आरंभ की और मन में सुख-सहगत संज्ञाओं का ध्यान आने पर उन्हें दूर भगाया।

(५) **आकाशानन्त्यायतन** – रूप संज्ञाओं का सर्वथा अतिक्रमण कर 'आकाश अनंत है' ऐसा ध्यान किया पर मन में रूप-सहगत संज्ञाओं का उद्भव होने पर उन्हें दूर भगाया।

(६) **विज्ञानानन्त्यायतन** – आकाशानन्त्यायतन का समतिक्रमण कर 'विज्ञान अनंत है' – ऐसा ध्यान किया पर मन में आकाशानन्त्यायतन-सहगत संज्ञाओं का ध्यान आने पर उन्हें दूर भगाया।

(७) **आकिंचन्यायतन** – विज्ञानानन्त्यायतन का समतिक्रमण कर 'कुछ भी नहीं' – ऐसी भावना के साथ ध्यान किया पर मन में विज्ञानानन्त्यायतन-सहगत संज्ञाओं का ध्यान आने पर उन्हें दूर भगाया।

(८) **नैवसंज्ञानासंज्ञायतन** – आकिंचन्यायतन से सर्वथा ध्यान हटाकर नैवसंज्ञानासंज्ञायतन की साधना की पर मन में आकिंचन्यायतन की संज्ञाओं का ध्यान आने पर उन्हें दूर भगाया।

(९) **अनिमित्त-चित्त समाधि** – सभी निमित्तों से अपने चित्त को दूर हटाकर ध्यान किया पर मन में निमित्त संज्ञाओं का ध्यान आने पर उन्हें दूर भगाया।

'अनिमित्त चेतो समाधि', विपश्यना समाधि है ।

– संयुत्तनिकाय २.४.३३२-३४०, मोग्गल्लानसंयुत्त

जब-जब ध्यान करते समय ऊपर वर्णित प्रकार से व्यवधान मन में उठते तब-तब भगवान अपने अलौकिक ऋद्धि-बल से आयुष्मान महामोग्गल्लान के सम्मुख प्रकट होकर उनको चेतावनी देते रहते थे कि उस समय की साधना में किसी प्रकार का प्रमाद न होने दे। और अपने चित्त को पूरी तरह समाहित रखते हुए कार्यरत रहे।

भगवान से समय-समय पर ऐसे संकेत मिलने पर आयुष्मान महामोग्गल्लान वैसे ही करते । उन्होंने घोषणा की कि यदि कोई किसी के लिए यह कहना चाहे – 'शास्ता द्वारा अनुगृहीत शिष्य ठीक से महाअभिज्ञा-प्राप्त हो चुका है' तो वह मेरे लिए ही ऐसा कह सकता है।

आर्यमौन

एक समय भगवान श्रावस्ती में विहार करते थे। वहां आयुष्मान महामोग्गल्लान ने भिक्षुओं को आमंत्रित किया – "हे भिक्षुओ!" "आवुस!" कहकर भिक्षुओं ने प्रत्युत्तर दिया। आयुष्मान महामोग्गल्लान बोले – "आवुस! एकांत में ध्यान करते समय मेरे मन में यह वितर्क उठा – जो यह आर्य तूष्णी-भाव (आर्यमौन) कहा जाता है सो यह आर्य तूष्णी-भाव क्या होता है?

"आवुस! तब मेरे मन में यह हुआ – भिक्षु वितर्क और विचार के शांत हो जाने से ..... द्वितीय ध्यान को प्राप्त कर विहार करता है। यही आर्य तूष्णी-भाव है।

"आवुस! सो मैं .... द्वितीय ध्यान को प्राप्त कर विहार करता हूं। इस प्रकार विहार करते हुये वितर्क-सहगत संज्ञायें मन में उठती हैं।

"आवुस! तब भगवान ने ऋद्धि से मेरे पास आकर यह कहा – हे मोग्गल्लान, हे ब्राह्मण! आर्य तूष्णी-भाव में प्रमाद मत करो। आर्य तूष्णी-भाव में चित्त को स्थिर करो, ... चित्त को एकाग्र करो, ... चित्त को लगा दो।

"आवुस! तब मैं .... द्वितीय ध्यान को प्राप्त कर विहार करने लगा। "यदि कोई वास्तव में कहे, 'शास्ता से प्रेरित होकर श्रावक ने महाअभिज्ञा को प्राप्त किया' तो वह मेरे विषय में ऐसा कह सकता है।"

साधना में सातत्य

एक दिन श्रावस्ती के जेतवन विहार में स्थविर महामोग्गल्लान पांव मोड़ कर पालथी मारे, काया सीधी किये, भगवान के निकट बैठे थे और अपने अभ्यंतर में कायगतानुस्मृति में सुप्रतिष्ठित थे। अवश्य ही भिक्षु स्थविर कायगतानुस्मृति की अति सूक्ष्म अवस्था में विचरण कर रहे होंगे, तभी तो कहा गया – 'अभ्यंतर में कायगतानुस्मृति में सुप्रतिष्ठित थे'। वे निःसंदेह काया की बाहरी हलन-चलन अथवा किसी बाह्य शवादि को देख

कर कायानुपस्सना नहीं कर रहे थे, बल्कि आंखें मूंदे, अंतर्मुखी हुए अपने भीतर सूक्ष्म स्तर पर सिर से पांव के तलवों तक शरीर के अनित्यधर्मा, विपरिणामधर्मा, विनाशधर्मा स्वभाव की विपस्सना करने में तल्लीन थे।

स्थविर को इसी प्रकार साधना में रत हुए देख भगवान के मुख से उदान के ये वचन निकल पड़े:–

"सति कायगता उपट्ठिता, छसु फस्सायतनेसु संवुतो।
सततं भिक्खु समाहितो, जञ्ञा निब्बानमत्तनो॥"

–उदान २५, महामोग्गल्लानसुत्त

[काया के प्रति सजगता स्थापित हो, बाह्य विषयों के संस्पर्श में आने वाली छहों इंद्रियां संयत हों, भिक्षु सतत समाहित रहता हो, तो अपने निर्वाण को जान लेता है।]

.....

साधक वाणी से मौन और शरीर से स्थिर इसीलिए रहता है कि काया के भीतर की सच्चाइयों के प्रति सजग रहते हुए इंद्रियातीत निर्वाण का स्वयं साक्षात्कार कर ले।

.....

इसी प्रकार स्थविर महामोग्गल्लान का भी नीचे उद्धृत उद्गार कितना मार्मिक है!

"विवरमनुपभन्ति विज्जुता, वेभारस्स च पण्डवस्स च।
नगविवरगतो झायति, पुत्तो अप्पटिमस्स तादिनो॥"

–थेरगाथा ११७६, महामोग्गल्लानत्थेरगाथा

["वेभार और पंडव पर्वतों के बीच बिजली चमकती है, लेकिन अप्रतिम बुद्ध का पुत्र उस समय पर्वत गुहा में प्रवेश कर ध्यानरत रहता है।"]

स्थविर खूब समझते थे – साधक के लिए अरण्यवास ध्यान करने के लिए होता है, पलायन के लिए नहीं, पर्यटन के लिए नहीं।

आस्रवों से मुक्त कराने वाली प्रतिपदा

एक समय आयुष्मान सारिपुत्त ने आयुष्मान महामोग्गल्लान के पास जाकर उनसे यह प्रश्न किया – "आयुष्मान! ये चार प्रतिपदाएं हैं – दुःखपूर्ण साधना विलंबित सिद्धि, दुःखपूर्ण साधना क्षिप्र सिद्धि, सुखपूर्ण साधना विलंबित सिद्धि, सुखपूर्ण साधना क्षिप्र सिद्धि।

"आयुष्मान! इन चारों प्रतिपदाओं में किस प्रतिपदा के अनुसार जीवन यापन करने से आपका चित्त आस्रवों से मुक्त हुआ?"

इस पर आयुष्मान महामोग्गल्लान ने इस प्रकार उत्तर दिया – "आयुष्मान! इन चारों प्रतिपदाओं में से जो यह दुःखपूर्ण साधना क्षिप्र सिद्धि वाली प्रतिपदा है, इसी के अनुसार जीवन यापन से मेरा चित्त आस्रवों से मुक्त हुआ है।"

[**स्पष्टीकरण** – कोई व्यक्ति स्वभाव से तीव्र राग वाला, तीव्र द्वेष वाला, तीव्र मोह वाला होने पर बार-बार दुःख-दौर्मनस्य में से गुजरता है। परंतु ऐसे व्यक्ति की पांचों इंद्रियों (श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि एवं प्रज्ञा) यदि नितांत प्रबल होती हैं तो वह इस कारण शीघ्र ही आस्रवों से मुक्त हो जाता है।

यदि कोई व्यक्ति ऊपर वर्णित स्वभाववाला हो और उसकी पांचों इंद्रियां दुर्बल हों तो वह अपने आस्रवों से विलंब से मुक्त हो पाता है।

यदि कोई व्यक्ति विपरीत स्वभाव वाला (अर्थात, न तीव्र रागवाला, न तीव्र द्वेषवाला, न तीव्र मोहवाला) हो तो वह बार-बार दुःख-दौर्मनस्य में से नहीं गुजरता है। यदि उसकी पांचों इंद्रियां नितांत प्रबल होती हैं तो वह शीघ्र ही अपने आस्रवों से मुक्त हो जाता है।

यदि कोई व्यक्ति ऐसे ही विपरीत स्वभाव वाला हो और उसकी पांचों इंद्रियां दुर्बल हों तो वह अपने आस्रवों से विलंब से मुक्त हो पाता है।]

'ब्राह्मण' का 'साधना' से मेल

एक समय भगवान बुद्ध श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन विहार में साधना हेतु विराजमान थे। उस समय आयुष्मान सारिपुत्त, महामोग्गल्लान, महाकस्सप, महाकच्चान, महाकोट्ठिक, महाकप्पिन, महाचुन्द, अनुरुद्ध, रेवत एवं आयुष्मान नन्द भगवान के पास ही जा रहे थे।

भगवान ने उन आयुष्मानों को वहां आते हुए दूर से ही देख लिया। उन्हें देखते ही वे भिक्षुओं से बोले – "भिक्षुओ! ये ब्राह्मण आ रहे हैं!"

भगवान के मुँह से यह वचन सुनकर वहां श्रोताओं में बैठा कोई ब्राह्मण जाति से उत्पन्न भिक्षु उत्सुकतावश भगवान से यह प्रश्न पूछ बैठा – "भंते! किन गुणों के कारण कोई ब्राह्मण कहलाता है?" अथवा "ब्राह्मणकारक धर्म कौन-से होते हैं?"

तब भगवान ने उस अवसर पर प्रश्न की गंभीरता को समझते हुए यह उदान कहा –

"वाहित्वा पापके धम्मे, ये चरन्ति सदा सता।
खीणसंयोजना बुद्धा, ते वे लोकस्मि ब्राह्मणा॥"

– उदान ५, ब्राह्मणसुत्त

["पापमय अकुशल धर्मों को दूर हटाकर, जो सदा स्मृति-संप्रज्ञान के साथ साधना करते हैं ऐसे साधक ही संयोजनों के क्षीण होने पर ज्ञान (बोधि) प्राप्त कर लोक में 'ब्राह्मण' कहलाते हैं।"]

ऋद्धिमानों में अग्र

महामोग्गल्लान की पहचान

एक समय भगवान राजगीर में गृध्रकूट (गृध्रकूट) पर्वत पर विहार करते थे। उस समय आयुष्मान सारिपुत्त कुछ भिक्षुओं के साथ भगवान से कुछ ही दूरी पर चंक्रमण कर रहे थे। आयुष्मान महामोग्गल्लान, आयुष्मान महाकस्सप, आयुष्मान अनुरुद्ध, आयुष्मान पुण्ण मन्ताणिपुत्त, आयुष्मान उपालि, आयुष्मान आनन्द और देवदत्त भी कुछ भिक्षुओं के साथ कुछ दूरी पर चंक्रमण कर रहे थे। भगवान ने भिक्षुओं को आमंत्रित किया और बोले –

"भिक्षुओ! तुम सारिपुत्त को कुछ भिक्षुओं के साथ चंक्रमण करते देख रहे हो न?"

"हां भंते!"

"भिक्षुओ! वे सभी भिक्षु बड़े प्रज्ञा वाले हैं।

"भिक्षुओ! तुम मोग्गल्लान को कुछ भिक्षुओं के साथ चंक्रमण करते देख रहे हो न?"

"हां भंते!"

"भिक्षुओ! वे सभी भिक्षु बड़े ऋद्धि वाले हैं।

"भिक्षुओ! तुम कस्सप को कुछ भिक्षुओं के साथ चंक्रमण करते देख रहे हो न?"

"हां भंते!"

"भिक्षुओ! वे सभी भिक्षु धुतांग धारण करने वाले हैं।

"भिक्षुओ! तुम अनुरुद्ध को कुछ भिक्षुओं के साथ चंक्रमण करते देख रहे हो न?"

"हां भंते!"

"भिक्षुओ! वे सभी भिक्षु दिव्य चक्षु वाले हैं।

"भिक्षुओ! तुम पुण्ण मन्ताणिपुत्त को कुछ भिक्षुओं के साथ चंक्रमण करते देख रहे हो न?"

"हां भंते!"

"भिक्षुओ! वे सभी बड़े धर्मकथिक हैं।

"भिक्षुओ! तुम उपालि को कुछ भिक्षुओं के साथ चंक्रमण करते देख रहे हो न?"

"हां भंते!"

"भिक्षुओ! वे सभी बड़े विनयधर हैं।

"भिक्षुओ! तुम आनन्द को कुछ भिक्षुओं के साथ चंक्रमण करते देख रहे हो न?"

"हां भंते!"

"भिक्षुओ! वे सभी बहुश्रुत हैं।

"भिक्षुओ! तुम देवदत्त को कुछ भिक्षुओं के साथ चंक्रमण करते देख रहे हो न?"

"हां भंते!"

"भिक्षुओ! वे सभी पापेच्छ हैं।

"भिक्षुओ! सभी प्राणी धातुओं के अनुसार परस्पर मेलजोल करते हैं। हीन प्रवृत्ति वाले हीन प्रवृत्ति वालों के साथ, उत्तम प्रवृत्ति वाले उत्तम प्रवृत्ति वालों के साथ।

"भिक्षुओ! अतीत काल में भी ऐसा ही होता था, अनागत (भविष्य) में भी ऐसा ही होगा और इस समय भी ऐसा ही हो रहा है।"

कुमार सीलव की रक्षा

मगधनरेश विम्बिसार के पुत्रों में एक था कुमार सीलव। अपने पूर्वजन्मों में श्रद्धा एवं उत्साहपूर्वक सम्यक मार्ग का अनुसरण करते रहने से वह निर्वाण की ओर अग्रसर होता चला गया। अपने कुशल कर्मों के फलस्वरूप वह भगवान गौतम बुद्ध के शासनकाल में राजघराने में जन्मा। उसके बड़ा होने पर बड़े भाई राजा अजातसत्तु ने उसे मार डालने के कई उपाय किये। पर कुमार बचता चला गया, क्योंकि यह उसका अंतिम जन्म था और जिसका अंतिम जन्म होता है, वह बिना अर्हत्त्व प्राप्त किये बीच में

नहीं मर सकता। राजा अजातसत्तु का प्रयास जारी रहा। एक वार भद्र सीलव को एक पागल हाथी पर बैठा कर राजा ने घूमने के लिए भेजा। राजा अजातसत्तु के इस षड्यंत्र को जानकर भगवान ने महामोग्गल्लान से कहा, "मोग्गल्लान, तुम कुमार सीलव को सुरक्षित ले आओ। उसका वाल भी वांका नहीं होना चाहिए।"

भगवान के आदेशानुसार महास्थविर अपने ऋद्धिवल से कुमार को उस पागल हाथी सहित शास्ता के पास ले आये। हाथी से उतर कर कुमार ने झुक कर भगवान के चरणों की वंदना की। उसकी मानसिक स्थिति के अनुरूप भगवान ने उसे धर्मोपदेश दिया। उपदेश सुनने पर उसके मन में धर्म और भगवान के प्रति श्रद्धा जगी। उसने प्रव्रज्या के लिए प्रार्थना की। इस पर भगवान ने उसे प्रव्रज्या दी। विपस्सना के अभ्यास में भगवान के निर्देश पर स्थविर महामोग्गल्लान ने उसकी सहायता की। परिश्रमपूर्वक विपस्सना भावना में जुटे रहने के परिणामस्वरूप वह शीघ्र ही अर्हत्त्व को प्राप्त हुआ। तदुपरांत कुमार कोसल राष्ट्र में आकर रहने लगा।

सीलव के प्रव्रज्या ग्रहण कर लेने पर भी उसके प्रति राजा अजातसत्तु का वैरभाव शांत नहीं हुआ। अपने द्वारा तैनात आदमियों को उसने भिक्षु सीलव की हत्या करने के लिए भेजा। राजा के आदमी उसे मारने के लिए पहुँचे। पर स्थविर सीलव द्वारा धर्मोपदेश सुनने के पश्चात उन सभी के मन में धर्म-संवेग जाग उठा। प्रसन्न-मन उन सभी ने प्रव्रज्या ग्रहण की और भिक्षु-संघ में सम्मिलित हो गये।

परिषद का शुद्धिकरण

एक समय भगवान श्रावस्ती में मिगारमाता के पुब्बाराम प्रासाद (महल) में विहार करते थे। उस समय भिक्षु-संघ से घिरे हुए भगवान वहां उपोसथ करने के लिए विराजमान थे। तब रात के बीत जाने पर रात का पहला याम बीत जाने पर आयुष्मान आनन्द आसन से उठे और उन्होंने अपने चीवर को एक कंधे पर रखा तथा भगवान से हाथ जोड़ प्रणाम कर निवेदन किया

"भंते, रात वीत चुकी है। पहला याम वीत गया है। भिक्षु-संघ दीर्घ काल से बैठा है। भंते, भिक्षुओं के सामने प्रातिमोक्ष (भिक्षु नियमों) का पाठ करें।"

ऐसा कहे जाने पर भी भगवान चुप रहे। दूसरी बार भी रात के दूसरे याम के वीतने पर आनन्द के वैसा ही निवेदन करने पर भगवान चुप रहे। तीसरी वार भी रात के तीसरे याम के वीतने पर आनन्द के वैसा ही निवेदन करने पर भगवान ने कहा –

"आनन्द! यह परिषद शुद्ध नहीं है।"

तव आयुष्मान महामोग्गल्लान ने विचार किया – भगवान ने किस व्यक्ति को दृष्टि में रखकर यह बात कही है कि 'आनन्द! यह परिषद शुद्ध नहीं है'। तव आयुष्मान महामोग्गल्लान ने सारे-के-सारे भिक्षु-संघ के चित्त को अपने चित्त से जानने की कोशिश की। और उस व्यक्ति को भिक्षु-संघ में वैठा देख लिया जो दुराचारी था, पापी था, जिसका आचरण अपवित्र तथा संदिग्ध था, जो छिपकर पाप-कर्म करनेवाला था, जो श्रमण के रूप में अश्रमण था, जो ब्रह्मचारी के रूप में अब्रह्मचारी था, जो अंदर से सड़ा हुआ था, अशुद्ध था। उसे देख, आसन से उठ, जहां वह व्यक्ति था, वहां जा पहुँचे। पास जाकर उस व्यक्ति से कहा – "आयुष्मान! उठो। भगवान ने तुम्हें देख लिया है। भिक्षुओं के साथ तुम्हारा रहना नहीं हो सकता।"

दूसरी बार भी वह व्यक्ति टस से मस नहीं हुआ। तीसरी बार भी यही स्थिति वनी रही।

तव आयुष्मान महामोग्गल्लान ने उस व्यक्ति को बाँह से पकड़ा और दरवाजे के वाहर करके कुंडी लगा दी। तब आयुष्मान महामोग्गल्लान ने भगवान के पास पहुँचकर कहा – "भंते! मैंने उस व्यक्ति को बाहर निकाल दिया है। अब परिषद परिशुद्ध है। भंते! अब भिक्षुओं के सामने प्रातिमोक्ष का पाठ करें।"

भगवान वोले – "मोग्गल्लान! आश्चर्य है। अद्भुत है। बाँह पकड़ कर बाहर निकालने की परिस्थिति तक वह मूर्ख जमा रहा।

"भिक्षुओ! अब तुम ही 'उपोसथ' कर लिया करो, प्रातिमोक्ष का पाठ कर लिया करो। आज के बाद मैं 'उपोसथ' नहीं करूंगा, प्रातिमोक्ष का पाठ नहीं करूंगा। इस बात के लिए कोई स्थान नहीं है, इस बात की कोई गुंजायश नहीं है कि जो परिषद अपरिशुद्ध हो, उसमें तथागत प्रातिमोक्ष का पाठ करें।"

मिथ्या-दृष्टि का उन्मूलन

सहम्पति, सनत्कुमार, घटीकार, तुदु जैसे कुछ ब्रह्मा तथा महाब्रह्मा विपस्सना करने वाले भी थे और भगवान की महत्ता को पूरी तरह जानते थे। परंतु अनेक ऐसे थे जो लोकाग्र ब्रह्मलोक को तथा अपने आपको भी नित्य, शाश्वत तथा ध्रुव मानते थे। अतः इस विषय में उनका जीवन अज्ञानमय अंधकार से भरा रहता था। कोई ब्रह्मलोकवासी होता है तो मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा का जीवन जीता है। वह राग नहीं जगाता, द्वेष नहीं जगाता; अतः वीतरागता, वीतद्वेषता का जीवन जीता है। इस प्रकार एक अंश में शुद्ध जीवन जीता है। परंतु यदि अपने लोक को और स्वयं अपने आप को नित्य, शाश्वत, तथा ध्रुव होने की मिथ्या दृष्टि धारण किये रहता है तो विद्या से दूर, अविद्या का शिकार बना रहता है, मोह-मूढ़ता का शिकार बना रहता है। वह वीतमोह नहीं हो पाता। अतः अपनी मुक्ति से वंचित रह जाता है। ऐसे अवीतमोह ब्रह्मा अनेक थे। वक ब्रह्मा उनमें से एक था।

एक बार भगवान श्रावस्ती के जेतवन आराम में विहार कर रहे थे। उसी समय वक ब्रह्मा के मन में ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न हुई कि कोई भी श्रमण या ब्राह्मण ऐसा नहीं है जिसकी उसके लोक तक पहुँच हो।

वक ब्रह्मा के मन की बात भगवान ने अपने मन से जान ली। उसी समय अंतर्धान होकर वे ब्रह्मलोक जा पहुँचे और वक ब्रह्मा से ऊपर आकाश में पालथी मार कर बैठ गये।

उसी समय आयुष्मान महामोग्गल्लान को यह जानने की इच्छा हुई कि शास्ता इस समय कहां विहार कर रहे हैं? जब उन्होंने अपनी दिव्य दृष्टि से देखा तो पाया कि भगवान तो ब्रह्मलोक में वक ब्रह्मा से ऊपर आकाश में पालथी मारे विराजमान हैं। महास्थविर महामोग्गल्लान भी वहीं जा पहुँचे तथा भगवान से कुछ नीचे और वक ब्रह्मा से ऊपर आकाश में भगवान के पूरब बैठ गये। इसी बीच आयुष्मान महाकस्सप, आयुष्मान महाकप्पिन और आयुष्मान अनुरुद्ध के मन में भी भगवान के बारे में जिज्ञासा उठी। अपने ऋद्धिबल से भगवान की स्थिति जानकर वे तीनों महास्थविर भी भगवान के पास जा पहुँचे और महामोग्गल्लान की ही तरह भगवान से नीचे ब्रह्मा से ऊपर आकाश में पालथी मार कर बैठ गये। इस प्रकार चारों महास्थविर भगवान के चारों ओर – पूरब, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशाओं में – आकाश में विराजमान हो गये। यह सब देखकर वक ब्रह्मा हतप्रभ हो गये।

तब आयुष्मान महामोग्गल्लान उस वक ब्रह्मा से बोले, "आवुस! आज भी तुम्हारी वही धारणा है, जो झूठी धारणा पहले थी? देख रहे हो, सबसे बढ़े-चढ़े दिव्य लोक में इस महातेज को?"

"नहीं, भंते, अब मेरा दृष्टिकोण वह नहीं रहा। मैं ब्रह्मलोक की आभा समाप्त होते देख रहा हूं। अब कैसे कह सकता हूं कि मैं नित्य हूं, शाश्वत हूं, ध्रुव हूं, तथा अमर हूं?"

इस प्रकार वक ब्रह्मा के मन में धर्म-संवेग जगाकर भगवान जेतवन लौट आये। अब वक ब्रह्मा ने ब्रह्मपरिषद के एक सदस्य को बुलाकर उससे कहा कि वह जाकर मान्यवर महामोग्गल्लान से यह जानकारी करे कि क्या उनके और महाकस्सप, महाकप्पिन तथा अनुरुद्ध जैसे महाऋद्धिशाली श्रावक भगवान के संघ में और भी हैं?

वक ब्रह्मा के दूत के पूछने पर महास्थविर महामोग्गल्लान ने उसे संक्षेप में बताया, "मान्यवर, दो, चार, दस, बीस नहीं भगवान बुद्ध के कितने ही

श्रावक त्रैविद्य, ऋद्धि-प्राप्त, दूसरों के चित्त की बातें जानने वाले, आसव-क्षीण, और अर्हत हैं।"

तब वह आयुष्मान महामोग्गल्लान के कहे का अभिनंदन और अनुमोदन कर बक ब्रह्मा के पास गया और उनके समीप जाकर उन्हें उक्त वस्तुस्थिति से अवगत कराया।

पार्षद द्वारा यह जानकारी मिलने पर बक ब्रह्मा ने प्रसन्नचित्त से महास्थविर के कथन का अभिनंदन किया।

नन्दोपनन्द-दमन

एक बार श्रेष्ठी अनाथपिण्डिक ने पांच सौ भिक्षुओं सहित भगवान को भोजन-दान हेतु आमंत्रित किया। उसी दिन प्रत्यूष काल में जब दस हजार लोकधातुओं को भगवान देख रहे थे तब उनके ज्ञान-पथ में नन्दोपनन्द नागराज आये। उस पर ध्यान करते हुए उन्होंने पाया कि उसमें धर्म की शरण में आने के लक्षण विद्यमान हैं। पर त्रिरत्न में उसकी श्रद्धा नहीं है, उल्टे वह मिथ्यादृष्टिक है। भगवान ने सोचा कि इसे इस मिथ्यादृष्टि से कौन मुक्त कर सकता है? तब उन्हें इस काम के लिए ऋद्धिमान महामोग्गल्लान याद आये।

नन्दोपनन्द का दमन करने के लिए आयुष्मान महामोग्गल्लान को अनेक प्रकार की ऋद्धियों का उपयोग करना पड़ा। इनसे पूरी तरह से पराभूत होकर वह कह उठा – "भंते, मैं आपकी शरण ग्रहण करता हूं।" इसके साथ ही वह महास्थविर के पैरों पर गिर पड़ा और उनकी वंदना प्रारंभ कर दी। उसे लेकर स्थविर भगवान के पास आये। शास्ता की वंदना करते हुए नन्द ने कहा, "भंते, मैं त्रिरत्न की शरण जाता हूं।"

"नागराज, सुखी रहो", कहते हुए नन्द की मिथ्यादृष्टि का त्याग करवा कर उसमें सम्यकदृष्टि जगाने का भगवान का उद्देश्य पूरा हुआ। इस कठिन कार्य में महास्थविर महामोग्गल्लान की भूमिका बड़ी अद्वितीय रही। इस भूमिका का संकेत नीचे अंकित सुप्रसिद्ध प्रशस्ति गाथा में भी हुआ है –

नन्दोपनन्द भुजगं विविधं महिद्धिं, पुत्तेन थेर भुजगेन दमापयन्तो।
इद्धूपदेसविधिना जितवा मुनिन्दो, तं तेजसा भवतु ते जयमङ्गलानि॥

[विविध प्रकार की महान ऋद्धियों से संपन्न नन्दोपनन्द नामक भुजंग को अपने पुत्र (शिष्य) महामोग्गल्लान स्थविर द्वारा अपनी ऋद्धि-शक्ति और उपदेश के बल से दमित कराते हुए जिन मुनींद्र (भगवान बुद्ध) ने जीत लिया, उनके प्रताप (तेज) से तुम्हारी जय हो! तुम्हारा मंगल हो!!]

शिक्षा के प्रति निष्ठावान

ऋद्धि-प्रदर्शन नहीं

एक बार राजगीर के एक सेठ को मूल्यवान चंदन का एक कुंदा मिला। उसने कुंदे से एक पात्र बनवाने की बात सोची। पात्र बनवाकर उसने उसे दान करने का विचार किया। तब उसने उस पात्र को अपने भवन के सबसे ऊपरी भाग पर इस प्रकार रखवाया कि वहां से सबको दिखाई दे सके। साथ ही यह घोषणा भी करवा दी कि जो कोई आकाश मार्ग से जाकर उस पात्र को उतार लेगा उसे वह पात्र दान में दे दिया जायगा। महास्थविर महामोग्गल्लान आयुष्मान पिण्डोल भारद्वाज के साथ उधर से ही भिक्षाटन के लिए निकल रहे थे। उन लोगों ने पात्र के संबंध में उस घोषणा को सुना। आयुष्मान पिण्डोल भारद्वाज ने महास्थविर से कहा, "मान्यवर, ऐसा लगता है कि बुद्ध शासन की परख हेतु यह घोषणा है। आप ऋद्धिमानों में अग्र हैं, विश्रुत हैं। लगता है यह पात्र आप के लिए ही है। इसलिए आप आकाशमार्ग से जाकर इसे उतार लें।" पर महास्थविर को यह सुझाव नहीं जँचा। उन्होंने इसे स्वीकार नहीं किया। वे बोले, "आयुष्मान पिण्डोल, आप भी अर्हत हैं। इसे आप स्वयं भी उतार सकते हैं।" महास्थविर यह जानते थे कि प्रदर्शन के लिए ऋद्धिबल को उपयोग में लाना उचित नहीं है।

आयुष्मान भारद्वाज ने अपनी ऋद्धि का उपयोग किया। वे आकाश में उड़े और उस पात्र को लेकर आकाश में ही तीन बार राजगीर का चक्कर लगाया। यह अद्भुत दृश्य देखकर पत्नी-पुत्र सहित श्रेष्ठी ने अर्हत को नमन करते हुए प्रार्थना की, "भंते भारद्वाज, हमारे घर पर ही उतरने की कृपा करें।"

इस घटना की चर्चा सारे नगर में होने लगी। भिक्षुओं ने भगवान को बताया। शास्ता को यह कार्य एकदम पसंद नहीं आया। अपनी स्वार्थ-सिद्धि या केवल प्रदर्शन के लिए ऋद्धियों का उपयोग उन्हें नहीं जँचा। यह भगवान

को बहुत ही तुच्छ लगा। भविष्य में इसका दुरुपयोग हो सकता है। इसलिए विनय के अंतर्गत ऋद्धि-बल-प्रदर्शन पर उन्होंने भविष्य के लिए रोक लगा दी।

सालवन का आत्यंतिक वर्णन

एक अवसर पर महागोसिङ्गसालवन में प्रसिद्ध-प्रसिद्ध भिक्षु जैसे आयुष्मान सारिपुत्त, आयुष्मान महामोग्गल्लान, आयुष्मान महाकस्सप, आयुष्मान अनुरुद्ध, आयुष्मान रेवत, आयुष्मान आनन्द आदि एकत्र हुए थे। उस समय आयुष्मान सारिपुत्त ने उनके समक्ष यह प्रस्ताव रखा – "रमणीय है यह सालवन। आज चांदनी रात है। सालवृक्ष सब प्रकार से पुष्पित हैं। मानो दिव्य गंध बहा रहे हैं। अच्छा हो यदि इस विषय पर चर्चा हो कि किस प्रकार के भिक्षु से इस सालवन की शोभा में और भी वृद्धि हो सकती है।"

उपस्थित भिक्षु-वृंद में से सभी ने अपनी-अपनी राय दी। जब आयुष्मान महामोग्गल्लान की बारी आयी तब उन्होंने कहा – "आयुष्मान सारिपुत्त! यदि दो भिक्षु यहां अभिधर्म पर संवाद करते रहें, परस्पर एक-दूसरे से प्रश्नोत्तर करते रहें, और उन प्रश्नोत्तरों से उद्विग्न न हों, उनकी यह धार्मिक कथा दूसरों को भी इधर (बुद्धोपदेश के आचरण में) प्रवृत्त करे तो मेरे विचार में ऐसे भिक्षुओं से इस सालवन की शोभा में और भी वृद्धि हो सकती है।"

सतिपट्ठानों की भावना

एक समय आयुष्मान अनुरुद्ध श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार कर रहे थे। एकांत में एकाग्रचित्त होने पर उनके मन में यह वितर्क जागा – जिन साधकों के चार सतिपट्ठान रुक गये उनके दुःखों को नाश करनेवाला आर्य-मार्ग भी रुक गया, अर्थात वे दुःखों से मुक्त नहीं हो सके। पर जिनके चार सतिपट्ठान परिपूर्ण हो गये उनके दुःखों का नाश करनेवाला मार्ग पूरा हो गया, अर्थात वे दुःखों से मुक्त हो गये।

तब आयुष्मान महामोग्गल्लान आयुष्मान अनुरुद्ध के मन के वितर्क को अपने चित्त से जान, जैसे बलवान पुरुष समेटी बांह को फैलाये या फैलायी

बांह को समेटे, वैसे ही आयुष्मान अनुरुद्ध के सम्मुख जा प्रकट हुए। तब आयुष्मान महामोग्गल्लान ने आयुष्मान अनुरुद्ध से यह प्रश्न पूछा – "आयुष्मान अनुरुद्ध, किसी साधक के चार सतिपट्ठान किस प्रकार परिपूर्ण होते हैं?"

"आवुस! कोई साधक श्रमशील, संप्रज्ञानी और स्मृतिमान होकर, राग और द्वेष को दूर करके काया में कायानुपस्सी होकर विहार करता है। वह भीतरी काया या बाहरी काया या भीतरी और बाहरी दोनों काया में समुदयधम्मानुपस्सी होकर विहार करता है, अथवा वयधम्मानुपस्सी होकर विहार करता है अथवा समुदयवयधम्मानुपस्सी होकर विहार करता है।"

आयुष्मान अनुरुद्ध ने आगे कहा, "इसी प्रकार वह वेदनाओं में वेदनानुपस्सी होकर विहार करता है। वह भीतरी वेदनाओं में या बाहरी वेदनाओं में या भीतरी और बाहरी दोनों वेदनाओं में समुदयधम्मानुपस्सी होकर विहार करता है, अथवा वयधम्मानुपस्सी होकर विहार करता है, अथवा समुदयवयधम्मानुपस्सी होकर विहार करता है।

"ऐसे ही वह चित्त में चितानुपस्सी और धर्मों में धम्मानुपस्सी होकर विहार करता है। आयुष्मान, ऐसे ही साधक के चार सतिपट्ठान पूर्ण होते हैं।"

भिक्षु महामोग्गल्लान ने आगे जानना चाहा कि आयुष्मान अनुरुद्ध ने किन धर्मों की भावना करके महा अभिज्ञा (विशिष्ट ज्ञान) की प्राप्ति की है।

"आयुष्मान, इन्हीं चार सतिपट्ठानों का अभ्यास करके मैंने महा अभिज्ञाओं को प्राप्त किया है। इनके अभ्यास में सतत वृद्धि करते रहने से मुझे सहस्र लोकों की जानकारी भी हुई है।"

भिक्षु अनुरुद्ध की व्याख्या का अनुमोदन कर आयुष्मान महामोग्गल्लान अपने निवास की ओर प्रस्थान कर गये।

संक्षेप में तृष्णा के क्षय द्वारा मुक्ति

एक समय भगवान श्रावस्ती में मिगारमाता विसाखा के प्रासाद पुब्बाराम में विहार करते थे। तब देवराज इंद्र भगवान के पास आये और

अभिवादन करके एक ओर खड़े हो गये। देवेंद्र सक्क भगवान से बोले, "भंते, कैसे संक्षेप में ही भिक्षु तृष्णा के क्षय द्वारा मुक्त हो जाता है। वह कैसे पूर्ण निष्ठावान, पूर्ण योगक्षेमवान, पूर्ण कृतकृत्य तथा देवमनुष्यों में उच्चतम स्थिति प्राप्त कर सकता है।"

"देवेंद्र! किसी भिक्षु द्वारा यह सुन लेने के बाद कि 'सभी धर्म (पदार्थ) रागाभिनिवेश के लिए अनुपयुक्त हैं' – वह सभी धर्मों की वास्तविकता जान लेता है। तब से वह शरीर पर जिस किसी प्रकार की वेदना का अनुभव करता है वह उसकी अनित्यता समझकर उसके प्रति वैराग्य रखता हुआ साधनारत रहता है। उन वेदनाओं के प्रति ऐसा भाव रखते हुए वह किसी भी लौकिक वस्तु का उपादान (रागयुक्त ग्रहण) नहीं करता, उपादान न करने पर उसे परित्रास (भय) भी नहीं होता। यों वह शीघ्र ही परिनिर्वाण की ओर बढ़ता जाता है। तब उसे यह बोध हो जाता है – 'मेरा जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था वह कर लिया, अब इससे परे कोई कर्त्तव्य शेष नहीं है।' देवेंद्र! ऐसे वह भिक्षु संक्षेप में तृष्णाक्षय द्वारा विमुक्त हो जाता है। और पूर्ण निष्ठावान, पूर्ण योगक्षेम, पूर्ण ब्रह्मचारी, पूर्ण कृतकृत्य तथा देव-मनुष्यों में उच्चतम स्थिति प्राप्त कर लेता है।"

भगवान के कथन का अनुमोदन और उनका अभिनंदन करके देवराज सक्क अंतर्धान हो गये। भगवान से कुछ ही दूरी पर स्थविर महामोग्गल्लान बैठे थे। उनके मन में यह विचार आया कि सक्क ने भगवान के तृष्णाक्षय द्वारा मुक्ति से संबंधित उपदेश को समझ कर उसका अनुमोदन किया है अथवा बिना समझे ही। यही जांचने के लिए वे अपने ऋद्धिबल से तावतिंस देवलोक में जा पहुँचे।

स्थविर महामोग्गल्लान को दूर से ही आते देखकर देवराज सक्क उनकी आवभगत में उठ खड़े हुए। बोले, "मारिस, बहुत दिनों बाद आपका इधर आगमन हुआ है।" फिर एक ऊंचे आसन पर स्थविर को बैठाते हुए स्वयं एक नीचे आसन पर बैठ गये। महास्थविर ने कहा, "देवेंद्र, तृष्णा के क्षय

द्वारा मुक्ति के संबंध में भगवान ने जो उपदेश आपको दिया, उसे मैं भी सुनना चाहता हूं। अच्छा हो यदि मुझे भी उसके श्रवण का भागी बना दें।"

"मान्यवर, हम बहुकृत्य बहुकरणीय हैं। इसलिए, अच्छी तरह से सुनी हुई बातें भी याद नहीं रहतीं, शीघ्र ही भूल जाती हैं। आप यह वेजयन्त (वैजयंत) नामक प्रासाद देखें, जिसका निर्माण देवासुर संग्राम में देवों की विजय के उपलक्ष्य में किया गया है। इसके एक-एक तल पर सौ-सौ खंड हैं। एक-एक खंड में सात-सात कूटागार हैं। एक-एक कूटागार में सात-सात अप्सरायें रहती हैं। एक-एक अप्सरा की सात-सात परिचारिकाएं हैं। मान्यवर, क्या आप प्रासाद की रमणीयता को देखना चाहेंगे?"

आयुष्मान महामोग्गल्लान ने मौन रह अपनी सहमति जतलायी। आयुष्मान महामोग्गल्लान को आगे-आगे करके देवेंद्र वेजयन्त प्रासाद के पास पहुँचे। स्थविर को देखकर इंद्र की परिचारिकायें लजाती हुई अपनी-अपनी कोठरियों में चली गयीं।

अपनी दिव्य संपत्ति का प्रदर्शन करते हुए बार-बार देवेंद्र बोलते, "मारिस महामोग्गल्लान, देखें इसकी रमणीयता को।" देवेंद्र सक्क का व्यवहार देखकर ऋद्धिमान को लगा कि यह देव अपनी दिव्य संपत्ति के प्रमाद में विहर रहा है, क्यों न मैं इस यक्ष को उद्विग्न करूं। तब आयुष्मान महामोग्गल्लान ने दायें पैर के अंगूठे से दबाकर वेजयन्त प्रासाद को कँपा दिया, हिला दिया। ऐसा होने पर देवेंद्र-सहित तावतिंस लोक के सभी निवासी भयभीत, उद्विग्न और रोमांचित हो उठे।

जिसने अपनी ऋद्धि से, अंगूठे के जोर।
हिला दिया प्रासाद को, सभी देव मतिभोर॥

सक्क को उद्विग्न और रोमांचित जान आयुष्मान महामोग्गल्लान ने कहा, "देवराज, तृष्णा के क्षय से निर्वाण के संबंध में भगवान ने आपसे क्या कहा था?"

आयुष्मान महामोग्गल्लान के ऋद्धिबल के प्रभाव को देखकर सक्क ने वह सब कुछ अक्षरशः कह सुनाया जो भगवान ने उन्हें बताया था।

देवेंद्र के कथन का अनुमोदन कर आयुष्मान महामोग्गल्लान वहां से अंतर्धान हो गये। आश्चर्यचकित और सहमी-सी परिचारिकाओं ने सक्क से पूछा, "देव, क्या यह आपके शास्ता थे?"

"यह मेरे शास्ता नहीं, बल्कि गुरुभाई आयुष्मान महामोग्गल्लान थे।"

"आश्चर्य है देव! अद्भुत है!! जब आपके गुरुभाई ऐसे शक्तिशाली और महानुभाव हैं तब आपके शास्ता कैसे होंगे!"

बेजोड़ बोज्झङ्ग

आयुष्मान महामोग्गल्लान भगवान की शिक्षा के प्रति असीम निष्ठा रखते थे। एक समय वे बहुत रोग-ग्रस्त हो गये। तब उन्हें दुःखी देखकर भगवान ने स्वयं उनको सातों बोज्झङ्गों की देशना दी। आयुष्मान ने इस देशना का अभिनंदन किया। इसके परिणामस्वरूप वे उसी क्षण रोग से मुक्त हो गये।

नीचे उद्धृत किया गया संदर्भ इस पर प्रकाश डालता है –

एकस्मिं समये नाथो, मोग्गल्लानञ्च कस्सपं।
गिलाने दुक्खिते दिस्वा, बोज्झङ्गेसत्त देसयी॥
ते च तं अभिनन्दित्वा, रोगा मुच्चिंसु तङ्खणे।

– धम्म-वंदना २१.४, बोज्झङ्गसुत्त

[भगवान बुद्ध ने एक समय मोग्गल्लान और कस्सप को रोगी और दुःखी देखकर सात बोज्झङ्गों का उपदेश दिया था। वे उनका अभिनंदन कर उसी क्षण रोग से मुक्त हो गये।]

कुछ धार्मिक प्रसंग

क्या क्या अव्याकृत है?

एक वार वच्छगोत्त परिव्राजक आयुष्मान महामोग्गल्लान से मिला। कुशलक्षेम के वाद उसने आयुष्मान महामोग्गल्लान से पूछा, "मोग्गल्लान, क्या लोक शाश्वत है?"

"वच्छ, भगवान ने इसे अव्याकृत वताया है।" "क्या लोक अशाश्वत है?" "इसे भी भगवान ने अव्याकृत वताया है।" इसी प्रकार वच्छगोत्त परिव्राजक ऐसे ही और कई प्रश्न पूछता रहा। जैसे - क्या जो जीव है वही शरीर है? क्या तथागत मरने के वाद रहते हैं या नहीं रहते हैं? आदि आदि....।

आयुष्मान महामोग्गल्लान पूरी दृढ़ता के साथ सवका उत्तर देते रहे कि तथागत ने ऐसे सभी प्रश्नों को अव्याकृत कहा है।

इस पर वच्छ परिव्राजक ने कहा, "पर, मोग्गल्लान!, दूसरे मतों के परिव्राजक पूछे जाने पर ऐसा स्पष्ट उत्तर देते हैं-लोक शाश्वत है, अशाश्वत है। मरने के वाद तथागत रहते हैं, नहीं रहते हैं।"

आयुष्मान महामोग्गल्लान ने कहा, "वच्छ, दूसरे मत वाले परिव्राजक समझते हैं कि 'मैं चक्षु हूं', 'चक्षु मेरा है', 'चक्षु मेरी आत्मा है'। इसी प्रकार वे श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा आदि अन्य इंद्रियों के वारे में भी सोचते, समझते हैं। इसी कारण वे परिव्राजक ऐसा उत्तर दे देते हैं, 'लोक शाश्वत है', 'लोक शाश्वत नहीं है', 'मरने के वाद तथागत रहते हैं', 'नहीं रहते हैं'। आदि आदि....।

"वच्छ, भगवान अरहंत हैं, सम्यक संवुद्ध ऐसा नहीं समझते कि 'मैं चक्षु हूं', 'चक्षु मेरा है' और 'चक्षु मेरी आत्मा है'। श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा आदि

सभी इंद्रियों के वारे में भी उनका ठीक ऐसा ही अनुभव है। इसीलिए पूछे जाने पर वुद्ध ऐसा उत्तर नहीं देते हैं।"

इसके वाद वच्छगोत्त परिव्राजक भगवान के पास जा पहुँचा और यही प्रश्न उनसे भी किया, "गौतम, क्या लोक शाश्वत है?"

भगवान ने कहा कि इसे मैंने अव्याकृत वताया है। उपरोक्त प्रकार से वच्छ द्वारा अन्य प्रश्नों के भी पूछे जाने पर भगवान ने कहा कि मैंने इन्हें अव्याकृत ही वताया है।

भगवान की वाणी सुनकर वच्छ परिव्राजक वोला, "आश्चर्य है, अद्भुत है, गौतम! इस धर्मोपदेश में वुद्ध और उनके श्रावक के शब्द और अर्थ हू-वहू एक-से हैं। यही प्रश्न जव मैंने श्रमण मोग्गल्लान से किये तो उन्होंने भी एकदम इन्हीं शब्दों में उत्तर दिये। आश्चर्य है! अद्भुत है!!"

कर्म-विपाक

भगवान के जीवनकाल में अन्य संप्रदायों के श्रमण-व्राह्मण भी उनके पास आया करते थे। वे उनके शिष्यों से भी मिलते थे। धर्म के संवंध में वे भगवान से या उनके शिष्यों से चर्चा करते। ऐसे ही एक वार निगंठ नाटपुत्त का श्रावक शाक्य वप्प आयुष्मान महामोग्गल्लान से मिला। दोनों में धर्म-चर्चा होती रही। अंत में आयुष्मान महामोग्गल्लान ने कर्मफल के संवंध में उससे एक प्रश्न किया जिसका उत्तर वप्प ठीक से नहीं दे पाया।

ध्यान से उठकर शास्ता भी उसी समय वहां पधारे। उन्होंने जानना चाहा कि दोनों में क्या वार्ता हो रही थी। भगवान के पूछने पर आयुष्मान महामोग्गल्लान ने सारा वार्तालाप भगवान से कह सुनाया। भगवान की यह वहुत वड़ी विशेषता थी कि कभी भी वे अपनी वातें या सिद्धांत किसी पर थोपते नहीं थे। उसे तर्क, विचार-विमर्श और अनुभव के आधार पर स्वयं निर्णय लेने का पूरा अवसर प्रदान करते थे। यही उन्होंने वप्प के साथ भी किया। वोले, "वप्प, जो वात तुझे स्वीकार्य हो उसे मानना और जो स्वीकार्य न हो उसे छोड़ देना। यदि कोई वात समझ में न आये, तो मुझसे ही उसका

आशय पूछ लेना।" निगंठ श्रावक वप्प ने भगवान का निर्देश स्वीकार कर लिया। धर्म-चर्चा प्रारंभ हुई। शुद्ध धर्म के आधार पर भगवान ने पूछा, "वप्प, क्या तुम ऐसा मानते हो कि व्यक्ति के कायिक कर्म के परिणामस्वरूप जो दुःखद आस्रव उत्पन्न होते हैं वे कायिक कर्म से विरत रहने पर उत्पन्न नहीं होते? क्या वह नये कर्म नहीं करता और पुराने कर्मों को तटस्थ भाव से देख-देख कर क्षीण कर देता है? क्या यह क्षीण करने वाली क्रिया प्रत्यक्ष है, तत्काल फलदायी है, 'आओ और स्वयं देखो' कहलाने योग्य है और विज्ञजनों द्वारा साक्षात्कार करने योग्य है? क्या तुझे ऐसा लगता है, कि उस व्यक्ति के पूर्वजन्म के दुःखद आस्रवों की उसे प्राप्ति होगी?"

"नहीं भंते, मुझे ऐसा नहीं लगता।" फिर आगे शास्ता ने कहा, "क्या तुम ऐसा मानते हो कि व्यक्ति के वाचिक कर्म के परिणामस्वरूप जो दुःखद आस्रव उत्पन्न होते हैं वे वाणी की क्रियाओं से विरत रहने पर उत्पन्न नहीं होते? क्या वह नये कर्म नहीं करता और पुराने कर्मों को तज्जन्य वेदनाओं को तटस्थ-भाव से देख-देख कर क्षीण कर देता है? क्या यह क्षीण करने वाली क्रिया प्रत्यक्ष है, तत्काल फलदायी है, *'आओ और स्वयं देखो'* कहलाने योग्य है और विज्ञजनों द्वारा साक्षात्कार करने योग्य है? तो वप्प, क्या तुझे ऐसा लगता है कि उस व्यक्ति के पूर्वजन्मों के दुःखद आस्रवों की उसे प्राप्ति होगी?"

"नहीं भंते, प्राप्ति नहीं होगी।" इसी प्रकार शास्ता ने मन की क्रियाओं के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाले दुःखद आस्रवों और अविद्या के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाले दुःखद आस्रवों के बारे में प्रश्न किये। इनका उत्तर भी वप्प ने पहले ही की तरह नकारात्मक दिया।

श्रावक शाक्य वप्प से निषेधात्मक उत्तर पाने के बाद तथागत ने बताया, "वप्प, जिस भिक्षु का चित्त सम्यक रीति से विकारमुक्त हो गया हो, उसे छः प्रकार से शांति प्राप्त होती है। मन सहित छहों इंद्रियों का उनके विषयों से स्पर्श होने पर न तो उसे प्रसन्नता होती है, न ही अप्रसन्नता। आंख

से रूप देखने पर न तो वह प्रसन्न होता है, न अप्रसन्न। वह उपेक्षायुक्त, स्मृतिमान और संप्रज्ञानी बना रहता है। ऐसे ही कान से शब्द सुनने पर न तो वह प्रसन्न होता है, न ही अप्रसन्न। वह उपेक्षायुक्त, स्मृतिमान और संप्रज्ञानी बना रहता है। इसी प्रकार जिह्वा से रस चखने पर, नासिका से गंध सूंघने पर, त्वचा से स्प्रष्टव्य स्पर्श करने पर और मन से धर्म (मन के विषय) के जानने पर वह न तो प्रसन्न होता है, न ही अप्रसन्न। वह उपेक्षायुक्त, स्मृतिमान और संप्रज्ञानी बना रहता है। जब तक वह पंचेंद्रियों से अनुभव की जाने वाली सुखद और दुःखद वेदनाओं का अनुभव करता है, तब तक यह जानता है कि मैं पंचेंद्रियों से अनुभव की जाने वाली सुखद-दुःखद वेदनाओं का अनुभव कर रहा हूं। वह यह भी जानता है कि शरीर के न रहने पर, जीवन की समाप्ति हो जाने पर सभी वेदनाएं, सभी भली-बुरी लगने वाली अनुभूतियां ठंडी पड़ जायेंगी। ऐसा ही वह मनेंद्रिय से अनुभव करने वाली वेदनाओं के संबंध में भी जानता है।"

ऐसा उपदेश सुनकर निगंठ श्रावक वप्प संतुष्टि अनुभव करता हुआ बोला, "भंते, अभी तक धर्म की अभिवृद्धि की कामना से मैं केवल क्लेश और हैरानी-परेशानी का जीवन ही जी रहा था। निगंठों के प्रति मेरी जो श्रद्धा रही उसे आज से मैं तीव्रगामी नदी के स्रोत में बहा देता हूं। भगवन, जीवन-पर्यंत मुझे अब अपना उपासक स्वीकार करें।"

वेश्या का उद्धार

वेसाली (वैशाली) नगर में एक वेश्या की विमला नाम की पुत्री थी। युवती होकर उसने अपनी मां की दूषित आजीविका अपना ली। आयुष्मान महामोग्गल्लान के उपदेश सुन कर उसमें धर्म-संवेग जागा। साधना-विधि सीख कर वह ध्यान-मार्ग में आगे बढ़ने लगी और उसे भिक्षुणी-संघ में प्रव्रजित हो पाने की अनुमति मिल गयी। साधना द्वारा मुक्त अवस्था प्राप्त कर उसने अपने गर्हित जीवन का प्रत्यवेक्षण किया और वर्तमान उपलब्धि पर संतोष व्यक्त किया। अपना पूर्व जीवन याद कर उसने कहा कि कभी वह खूब सज-धज कर, सोलह शृंगार करके –

अड्ढासिं वेसिद्वारम्हि, लुद्दो पासमिवोड्डिय।
अकासिं विविधं मायं, उज्जग्घन्ती बहुं जनं॥

साज्ज पिण्डं चरित्वान, मुण्डा सङ्घाटिपारुता।
निसिन्ना रुक्खमूलम्हि, अवितक्करसा लाभिनी।
खेपेत्वा आसवे सब्बे, सीतिभूताम्हि निब्बुता॥

– *थेरीगाथा ७३-७६, विमलाथेरीगाथा*

[वेश्या-गृह के द्वार पर बैठ कर शिकारी की तरह जाल फैलाती थी। लोगों को फँसाने के लिए खिलखिलाकर हँसती थी और नाना प्रकार की माया रचती थी।]

[आज वही मैं सिर मुँड़ाये, चीवर पहने भिक्षाचरण करती हूं और पेड़ के तले बैठ कर अवितर्क ध्यान का लाभ लेती हूं। मैंने सारे आस्रवों को, विकारों को दूर कर दिया है। मैं निर्वाण-प्राप्त हूं, परम शांत हूं, शीतल हूं।]

महाश्रावक की मांग

एक दिन भगवान अनाथपिण्डिक के घर भिक्षा लेकर उत्तरी द्वार से निकले। स्वाभाविक रूप से शास्ता विसाखा के घर भिक्षा लेकर दक्षिणद्वार से निकल कर जेतवन में रहते थे। अनाथपिण्डिक के घर में भिक्षा लेकर द्वार से बाहर निकलकर पुव्वाराम में रहते। उत्तर द्वार से भगवान को जाते देखकर लोगों ने अनुमान लगा लिया कि अब भगवान चारिका पर जायेंगे। विसाखा को जब इस बात की जानकारी हुई तब शीघ्र ही वह भगवान के पास आ पहुँची। उनकी वंदना कर बोली, "भंते, क्या भगवान अब चारिका पर जाना चाहते हैं?"

"हां, विसाखे।"

"भंते, इतना धन लगाकर भगवान के लिए विहार बनवाना प्रारंभ किया। यहां कुछ दिन रुकने की अनुकंपा करें, लौट चलें।"

"विसाखे, अब तथागत का लौटना नहीं होगा।"

यह सोचकर कि 'निश्चय ही भगवान ने किसी हेतुसंपन्न को देखा होगा' उसने कहा – "भंते, यदि भगवान लौटें नहीं, तो मेरे लिए एक ऐसे भिक्षु को ठहरा कर जायँ जो विहार बनाने के विषय में यह जानते हों कि मुझे क्या करना चाहिए और क्या नहीं?"

"विसाखे, जिसे तुम चाहो उसका पात्र थाम लो।"

यद्यपि विसाखा स्थविर आनन्द को रोकना चाहती थी, फिर भी उसने सोचा कि अपनी ऋद्धि-संपन्नता के कारण महास्थविर महामोग्गल्लान उसके लिए ज्यादा उपयोगी सिद्ध होंगे। उनके रहने से उसका काम शीघ्र निष्पन्न हो जायगा। ऐसा सोचते हुए उसने आयुष्मान महामोग्गल्लान का पात्र थाम लिया। स्थविर ने शास्ता की ओर देखा।

शास्ता ने कहा, "मोग्गल्लान, तुम अपने पांच सौ भिक्षुओं के परिवार को लेकर लौट जाओ।"

आयुष्मान महामोग्गल्लान ने वैसा ही किया। महास्थविर के ऋद्धिबल के प्रताप से निचले तल्ले पर पांच सौ और ऊपरी तल्ले पर पांच सौ कमरों वाला प्रासाद निर्धारित समय से पहले ही बन पाया।

हल्ले-गुल्ले का शमन

एक समय भगवान श्रावस्ती में विहार कर रहे थे। रात जेतवन आराम में बिता कर पूर्वाह्न भिक्षाचार के पश्चात विश्राम करने के लिए मिगारमाता विसाखा के प्रासाद पुव्वाराम में आये। भगवान की यह आदत थी कि यदि रात जेतवन में बिताते तो दिन मिगारमाता विसाखा के प्रासाद में और यदि रात मिगारमाता के प्रासाद में बिताते तो दिन में विश्राम के लिए जेतवन में चले जाते। दोनों कुलों के त्याग को महत्त्व प्रदान करते हुए वे दोनों पर अनुग्रह किया करते थे। मिगारमाता के पुव्वाराम में नीचे-ऊपर पांच-पांच सौ कुल मिलाकर एक हजार कोठरियां थीं। उस दिन भगवान प्रासाद के ऊपर वाले कमरे में थे। नीचे के पांच सौ कमरों में पांच सौ भिक्षु ठहरे थे। जब भगवान प्रासाद के निचले भाग में रहते, तब भिक्षु भगवान को गौरव देने के लिए

प्रासाद के ऊपर नहीं जाते थे। उस दिन भी भगवान प्रासाद के ऊपर वाले कमरे में थे, इस कारण उस दिन प्रासाद के नीचे की पांच सौ कोठरियों में पांच सौ भिक्षु ठहर गये। वे सभी नये थे। उन्होंने हाल ही में दीक्षा लेकर संघ में प्रवेश पाया था। अभी वे पहले जैसे चपल, अशिष्ट, वाचाल, उद्धत और असंयत थे। दिन के विश्राम के बाद जब सांयकाल को उठे तब लौकिक जीवन से संबंधित विविध प्रकार की बातों में लग गये। उनके वार्तालाप के विषय थे – कोसलराज और अनाथपिण्डिक के प्रासाद, भोजनालय, भोजन के प्रकार, प्रव्रज्या से पूर्व का निवास, परिवार के सदस्य, आदि आदि। पांच सौ भिक्षुओं द्वारा ऊंचे स्वर में वार्तालाप करने के कारण प्रासाद में शोर-गुल होने लगा।

भगवान ने उनका शोर सुना तो सोचा, "मेरे यहां रहने पर भी ये इस प्रकार प्रमत्त हैं। ये सब मेरे साथ रहने लायक नहीं हैं।" शास्ता ने आयुष्मान महामोग्गल्लान को याद किया। भगवान के सम्मुख स्थविर उपस्थित हुए और ऐसे खड़े हुए जैसे पैर की वंदना कर रहे हों। भगवान ने कहा, "मोग्गल्लान! तुम्हारे उद्धत गुरुभाई बहुत हल्ला-गुल्ला कर रहे हैं। अच्छा हो यदि इनके भीतर संवेग पैदा कर सको।"

"अच्छा, भंते!", कहते हुए महास्थविर ने अपनी ऋद्धि शक्ति का उपयोग किया। पैर के अंगूठे से जल कसिण के आलंबन में ध्यान लगाकर कोस भर जमीन में स्थित उस बड़े प्रासाद को तथा उसके आसपास की भूमि को कँपाया। तब डरे हुए, संविग्न और रोमांचित भिक्षु एक ओर एकत्र हो गये। सभी चकित थे, आश्चर्य है मिगारमाता का यह प्रासाद इतना दृढ़, मजबूत और ठोस! यह कांप रहा है! हिल रहा है!!

जहां भिक्षु खड़े थे भगवान वहां गये और बोले, "भिक्षुओ, तुम ऐसे डरे हुए, संविग्न और रोमांचित हो एक ओर क्यों खड़े हो?"

"भंते, आश्चर्य है! मिगारमाता का यह दृढ़ एवं गहरी नींव वाला प्रासाद भी हिल रहा है, डोल रहा है! भगवान! यहां हम सुरक्षित नहीं!"

"भिक्षुओ, तुम्हें ही संविग्न करने के लिए, तुम्हारे भीतर धर्म-संवेग जगाने के लिए मोग्गल्लान ने अपने पैर के अंगूठे से सारे प्रासाद को कँपा दिया है। क्या यह जानते हो कि किन धर्मों के अभ्यास द्वारा भिक्षु महामोग्गल्लान इतना महान ऋद्धिशाली, महानुभाव और तेजस्वी हुआ है?"

"भंते, हमें कुछ पता नहीं। सभी धर्मों के मूल तो भगवान ही हैं। अच्छा हो यदि आप ही बतायें।"

"अच्छा तो सुनो, चार इद्धिपादों (ऋद्धिपादों) की भावना और अभ्यास करके उसने असाधारण क्षमता और शक्ति प्राप्त की है। उन इद्धिपादों के निरंतर अभ्यास द्वारा ही वह महान प्रतापी और ऋद्धिमान हुआ है।"

"भंते, महास्थविर ने किन चार इद्धिपादों की भावना की है?"

"भिक्षुओ, ये चार इद्धिपाद हैं – छंद, वीर्य, चित्त और मीमांसा। भिक्षु महामोग्गल्लान ने निरंतर इनके अभ्यास में वृद्धि करते हुए अनेक ऋद्धियां साध रखी हैं।

"भिक्षुओ, स्थविर महामोग्गल्लान चित्त और प्रज्ञा की विमुक्ति को अपने भीतर देखते हुए विहार करता है। यह सब जानकर तुम्हें भी ऐसे ही विहार करना चाहिए।"

प्रासाद के हिलने, कांपने से डरे और संविग्न भिक्षु भगवान की अमृतमयी वाणी को अत्यंत ध्यान से श्रवण कर रहे थे। ऐसी स्थिति में शास्ता के धर्मोपदेश का उन पर बड़ा ही अनुकूल प्रभाव पड़ा। वे भी विपस्सना भावना में जुट गये। कालांतर में उन भिक्षुओं में से कुछ सोतापत्ति, कुछ सकदागामी, कुछ अनागामी और कुछ अर्हत्त्व फल को प्राप्त हुए।

अनासक्ति-योग

एक समय भगवान शाक्य जनपद में कपिलवत्थु (कपिलवस्तु) के निग्रोधाराम में विहार करते थे। इस समय कपिलवस्तु में शाक्यों का नया संस्थागार बन कर तैयार हुआ था, जिसमें अभी तक किसी श्रमण, ब्राह्मण

या मनुष्य ने वास नहीं किया था। तब कपिलवस्तु वाले शाक्य भगवान के पास आये और उनका अभिवादन कर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठ, कपिलवस्तु के शाक्यों ने भगवान से निवेदन किया, "भंते, कपिलवस्तु में शाक्यों का नया संस्थागार बन कर तैयार हुआ है। इसमें अभी तक किसी श्रमण, ब्राह्मण या मनुष्य ने वास नहीं किया है। भंते! पहले भगवान ही उसका उपभोग करें। इसके बाद हम शाक्य लोग उसे प्रयोग में लायेंगे। वह कपिलवस्तु के शाक्यों के लिए दीर्घकाल तक हित और सुख के लिए होगा।"

मौन रह कर भगवान ने शाक्यों की प्रार्थना स्वीकार कर ली। संस्थागार में आसन, पानी, दीपक आदि की व्यवस्था करके शाक्य भगवान को लाने के लिए वहां आये। भिक्षु-संघ के साथ भगवान नये संस्थागार पहुँचे। पैर धोकर सर्वप्रथम शास्ता ने प्रवेश किया, उसके बाद भिक्षु-संघ और अंत में अन्य सभी लोग वैसे ही पैर पखार कर संस्थागार में प्रविष्ट हुए।

बहुत देर तक भिक्षुओं और शाक्य नागरिकों के बीच भगवान का धर्मोपदेश चलता रहा। रात ज्यादा बीत जाने पर भगवान ने शाक्यों को विश्राम के लिए अनुमति प्रदान की। उनके चले जाने के बाद शास्ता बोले, "मोग्गल्लान! भिक्षु-संघ को कोई आलस्य नहीं है। अतः तुम भिक्षुओं को धर्मोपदेश करो। मेरी पीठ दुःख रही है। मैं लेटता हूं।" ऐसा कह कर भगवान स्मृतिमान और संप्रज्ञ हो लेट गये।

तत्पश्चात महास्थविर ने अवश्रुत और अनवश्रुत (तृष्णायुक्त और तृष्णामुक्त) के संबंध में अपना उपदेश आरंभ किया – "भंतेगण! जब कोई भिक्षु प्रिय एवं अप्रिय विषयों के संपर्क में आने पर अपना होश खो बैठता है, तब उसे अवश्रुत कहते हैं। वह प्रिय रूप को देख कर आकृष्ट हो जाता है और अप्रिय रूप को देखकर खिन्न हो जाता है, प्रिय स्वर सुन कर आकृष्ट हो जाता है और अप्रिय स्वर सुन कर खिन्न हो जाता है। ऐसा ही उसका व्यवहार अन्य इंद्रियों और उनके विषयों के प्रति होता है। वह अनुकूल परिस्थितियों में नाचने-गाने और प्रतिकूल परिस्थितियों में रोने-चिल्लाने

लगता है। ऐसा चंचल-चित्त भिक्षु अचेत हुआ, बेहोश हुआ, लिप्त और आसक्त हुआ विहार करता है।

"ऐसे भिक्षु पर यदि मार चक्षु की राह से भी आता है, तो वह जीत लेता है। मन की राह से भी आता है तो वह जीत लेता है। इसी प्रकार अन्य किसी भी इंद्रिय तथा उनके विषय के मार्ग से भी यदि आता है तो वह जीत लेता है।"

ऐसे ही महास्थविर ने फिर एक दृष्टांत से समझाया – "जैसे सिरकी (सरकंडा) या तृण की बनी कोई सूखी जर्जर झोंपड़ी हो। उसे पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण किसी भी दिशा से कोई पुरुष आकर यदि घास की जलती लुआठी लगा दे, तो आग तुरंत उसे जला देगी। ऐसे ही तृष्णायुक्त भिक्षु के अंदर मार रूप, रस, शब्द, गंध, स्पर्श तथा मन के किसी भी द्वार से प्रवेश कर उस पर अधिकार जमा लेता है।

"ऐसे भिक्षु को रूप हरा देते हैं, वह रूपों को नहीं हराता। ऐसे भिक्षु को शब्द हरा देते हैं, वह शब्दों को नहीं हराता। इसी प्रकार अन्य इंद्रियों के विषय उसे हरा देते हैं। उसे रूप, रस, शब्द आदि सभी धर्मों से हारा हुआ कहा जाता है। बार-बार जन्म में डालने वाले, भयावह, दुःखद, भविष्य में जरा-मरण लाने वाले, संक्लेश पापमय अकुशल धर्म उसे हरा देते हैं।

"और भंतेगण, अनवश्रुत?" महास्थविर ने आगे कहा – "जो व्यक्ति इंद्रिय-विषयों के संपर्क में आने पर अपना होश नहीं खोता है, उसे अनवश्रुत कहते हैं। वह प्रिय रूप देखकर उसके लिए आकृष्ट नहीं होता और अप्रिय को देख कर उससे खिन्न नहीं होता। ऐसा ही उसका व्यवहार अन्य इंद्रियों और उनके विषयों के प्रति भी होता है। वह अनुकूल परिस्थितियों में नाचने-गाने और प्रतिकूल परिस्थितियों में रोने-चिल्लाने नहीं लगता। वह आत्मचिंतन करते अप्रमत्त चित्त से विहार करता है। वह चेतोविमुक्ति और प्रज्ञाविमुक्ति को यथार्थतः जानता है। जो उसके पापमय अकुशल धर्म हैं वे बिल्कुल निरुद्ध हो जाते हैं। ऐसे भिक्षु पर यदि मार चक्षु की राह से भी आता है तो वह जीत नहीं सकता। मन की राह से भी आता है तो वह जीत नहीं सकता।

इसी प्रकार अन्य किसी भी इंद्रिय की राह से आता है तो भी वह जीत नहीं सकता। आवुस! जैसे मिट्टी का बना गीला लेपवाला घर हो, उसे पूरब, पच्छिम, उत्तर, दक्षिण किसी भी दिशा से कोई पुरुष आकर यदि घास की जलती लुआठी लगा दे, तो आग उसे पकड़ नहीं सकेगी। ऐसे तृष्णामुक्त भिक्षु के अंदर मार चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय तथा मन किसी भी द्वार से न तो प्रवेश कर पायगा और न ही उन पर अधिकार जमा पायगा। उन्हें रूप, शब्द, रस आदि किन्हीं भी धर्मों से मार हरा नहीं सकता। ऐसे भिक्षु रूप को हरा देते हैं, रूप उन्हें नहीं हराता। ऐसे भिक्षु शब्द को हरा देते हैं, शब्द उन्हें नहीं हराता। इसी प्रकार अन्य इंद्रियों के विषयों को भी वे हरा देते हैं। उन्हें रूप, रस, शब्द आदि सभी धर्मों से जीता हुआ कहा जाता है। बार-बार जन्म में डालने वाले, भयावह, दुःखद, भविष्य में जरामरण लाने वाले, संक्लेश पापमय अकुशल धर्मों को वह जीत लेता है। ऐसा होता है अनवश्रुत।"

तब भगवान ने उठकर महामोग्गल्लान को सराहा – "वाह मोग्गल्लान! तुमने भिक्षुओं को अवश्रुत और अनवश्रुत के बारे में अच्छा उपदेश दिया।"

भिक्षुओं ने भी आयुष्मान महामोग्गल्लान के कथन का अभिनंदन किया।

देवलोक के प्रसंग

त्रिरत्न में श्रद्धा से सद्गति

ऋद्धिमान महामोग्गल्लान के लिए विभिन्न लोकों की यात्रा कर पाना अति सरल था। एक समय वे श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। तब आयुष्मान महामोग्गल्लान जैसे कोई बलवान पुरुष समेटी बांह को पसार दे और पसारी बांह को समेट ले वैसे जेतवन में अंतर्धान हो तावतिंस देवों के बीच जा प्रकट हुये।

तब देवेंद्र सक्क पांच सौ देवताओं के साथ आयुष्मान महामोग्गल्लान के पास आया और उनको अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़े देवेंद्र से आयुष्मान महामोग्गल्लान बोले – "देवेंद्र! बुद्ध, धर्म और संघ की शरण में जाना बड़ा ही उत्तम है। इन त्रिरत्न की शरण ग्रहण करने से कितन ही लोग मृत्यु के उपरांत स्वर्ग में उत्पन्न होते हैं और सुगति प्राप्त करते हैं।"

– संयुत्तनिकाय २.४.३४१, सक्कसुत्त

सक्क ने महास्थविर के कथन का अनुमोदन किया। आगे आयुष्मान महामोग्गल्लान ने बुद्ध, धर्म और संघ की व्याख्या करते हुए उनके तेज और प्रताप पर प्रकाश डाला। "देवेंद्र! बुद्ध में दृढ़ श्रद्धा का होना बड़ा ही कल्याणकारी है। वे भगवान अर्हत हैं, सम्यक संबुद्ध हैं, विद्या तथा आचरण से संपन्न हैं, उत्तम गति प्राप्त हैं, समस्त लोकों के ज्ञाता हैं, सर्वश्रेष्ठ सारथी (पथभ्रष्ट लोगों को सुमार्ग पर लाने वाले) हैं, देवों और मनुष्यों के शास्ता हैं, ऐसे हैं वे भगवान बुद्ध। उनके प्रति दृढ़ श्रद्धा मंगलकारी है, कल्याणकारी है।

"देवराज! धर्म में दृढ़ श्रद्धा का होना बड़ा कल्याणप्रद है। यह धर्म शास्ता द्वारा भलीभांति समझाया गया है, स्वयं देखने योग्य है, तत्काल फलदायी है, *'आओ और देखो'* (कहलाने योग्य) है, निर्वाण तक ले जाने

वाला है, और प्रत्येक समझदार व्यक्ति द्वारा साक्षात्कार करने योग्य है। ऐसा है भगवान का यह धर्म। इस पर दृढ़ श्रद्धा का होना वड़ा मंगलकारी है।"

ऐसे ही महास्थविर ने संघ के वारे में भी स्पष्ट किया, "सक्क! संघ में दृढ़ श्रद्धा का होना वड़ा मंगलप्रद है। भगवान का यह श्रावक-संघ सुमार्ग पर चलने वाला है, सीधे मार्ग पर चलने वाला है, न्यायमार्ग पर चलने वाला है, उचित मार्ग पर चलने वाला है। यह जो (मार्ग और फल प्राप्त) व्यक्तियों के चार जोड़े हैं, अर्थात आठ पुरुष पुद्गल हैं, यही भगवान का श्रावकसंघ है। यह आवाहन करने योग्य है, आतिथ्य के योग्य है, दक्षिणा देने योग्य है, अंजलिवद्ध प्रणाम किये जाने के योग्य है। लोगों के लिए यही श्रेष्ठतम पुण्य क्षेत्र है। ऐसे संघ के प्रति दृढ़ श्रद्धा शुभ है, कल्याणकारी है।

"देवेंद्र! दृढ़तापूर्वक शीलों से युक्त होना अच्छा है, शील जो अखंड, अछिद्र, शुद्ध, निर्मल, निष्कलंक, सेवनीय, विज्ञों से प्रशंसित, अनिंदित तथा समाधि के साधक हों। देवेंद्र! इन श्रेष्ठ शीलों से युक्त होने से कितने लोग मरने के वाद स्वर्ग में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त होते हैं।

"देवेंद्र! वुद्ध, धर्म और संघ में श्रद्धा रखने वाले दूसरे देवों से दस वातों में वढ़ जाते हैं। वे हैं: दिव्य आयु, वर्ण, सुख, यश, आधिपत्य, रूप, शब्द, रस, गंध, और दिव्य स्पर्श। इसीलिए त्रिरत्न की शरण में आना अति मंगलमय है।"

देवताओं का संवोधि-लाभ ज्ञान

एक समय भगवान श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में विहार कर रहे थे। उस समय एकांत-सेवी ध्यानारूढ़ आयुष्मान महामोग्गल्लान के मन में यह वितर्क पैदा हुआ कि किन-किन देवताओं को ऐसा ज्ञान होता है कि हम सोतापन्न हैं, हमारा पतन नहीं हो सकता, हमारा संवोधि-लाभ निश्चित है। उस समय तिस्स नामक भिक्षु जो कि मृत्यु के उपरांत ब्रह्मलोक में उत्पन्न हुआ था उसके वारे में ख्याति थी कि तिस्स ब्रह्मा महाऋद्धिमान और महाप्रतापी है।

उसी समय आयुष्मान महामोग्गल्लान जेतवन से अंतर्धान होकर ब्रह्मलोक में जा प्रकट हुए। तिस्स ब्रह्मा ने आयुष्मान महामोग्गल्लान को दूर से आते देखकर कहा – मित्र मोग्गल्लान, पधारें। आपका स्वागत है। वहुत समय के वाद आपका आना हुआ। तिस्स ब्रह्मा ने आयुष्मान मोग्गल्लान को आसन देकर वैठाया तथा उन्हें नमस्कार कर स्वयं एक ओर वैठ गया। एक ओर वैठे तिस्स ब्रह्मा को आयुष्मान महामोग्गल्लान ने यह कहा – हे तिस्स! किन-किन देवताओं को ऐसा ज्ञान होता है कि हम सोतापन्न हैं, हमारा पतन नहीं हो सकता, हमारा संवोधि-लाभ निश्चित है?

"मित्र मोग्गल्लान! चातुर्महाराजिक देवताओं को ऐसा ज्ञान होता है कि हम सोतापन्न हैं, हमारा पतन नहीं हो सकता, हमारा संवोधि-लाभ निश्चित है।"

"तिस्स! क्या सभी चातुर्महाराजिक देवताओं को ऐसा ज्ञान होता है कि हम सोतापन्न हैं, हमारा पतन नहीं हो सकता, हमारा संवोधि-लाभ निश्चित है?"

"मित्र मोग्गल्लान! सभी चातुर्महाराजिक देवताओं को ऐसा ज्ञान नहीं होता कि हम सोतापन्न हैं, हमारा पतन नहीं हो सकता, हमारा संवोधि-लाभ निश्चित है। जिन चातुर्महाराजिक देवताओं की वुद्ध के प्रति अविचल श्रद्धा नहीं होती, धर्म के प्रति अविचल श्रद्धा नहीं होती, संघ के प्रति अविचल श्रद्धा नहीं होती, जो श्रेष्ठ आर्यशील से युक्त नहीं होते, उन्हें यह ज्ञान नहीं होता है कि हम सोतापन्न हैं, हमारा पतन नहीं हो सकता, हमारा संवोधि-लाभ निश्चित है। मित्र मोग्गल्लान! जिन चातुर्महाराजिक देवताओं की वुद्ध के प्रति अविचल श्रद्धा होती है, धर्म के प्रति अविचल श्रद्धा होती है, संघ के प्रति अविचल श्रद्धा होती है, जो श्रेष्ठ आर्यशील से युक्त होते हैं, उन्हें यह ज्ञान होता है कि हम सोतापन्न हैं, हमारा पतन नहीं हो सकता, हमारा संवोधि-लाभ निश्चित है।"

इसी प्रकार आयुष्मान मोग्गल्लान द्वारा तावतिंस देवताओं, याम देवताओं, तुसित देवताओं, निम्मानरति देवताओं, परनिम्मितवसवत्ती देवताओं के वारे में तिस्स ब्रह्मा से यह पूछने पर कि 'क्या इन देवताओं को यह ज्ञान होता है कि हम सोतापन्न हैं, हमारा पतन नहीं हो सकता, हमारा

संबोधि-लाभ निश्चित है?' तिस्स ब्रह्मा ने यह उत्तर दिया कि जिन देवताओं की बुद्ध के प्रति अविचल श्रद्धा नहीं होती, धर्म के प्रति अविचल श्रद्धा नहीं होती, संघ के प्रति अविचल श्रद्धा नहीं होती, जो श्रेष्ठ आर्य-शील से युक्त नहीं होते, उन्हें यह ज्ञान नहीं होता। इसके विपरीत जिन देवताओं की बुद्ध के प्रति अविचल श्रद्धा होती है, धर्म के प्रति अविचल श्रद्धा होती है, संघ के प्रति अविचल श्रद्धा होती है, जो श्रेष्ठ आर्यशील से युक्त होते हैं, उन्हें यह ज्ञान होता है कि हम सोतापन्न हैं, हमारा पतन नहीं हो सकता, हमारा संबोधि-लाभ निश्चित है।

सुमन का फल

एक समय महास्थविर महामोग्गल्लान जेतवन में विहार करते थे। वह चारिका के लिए देवलोक की ओर निकल पड़े। वहां पहुँचकर वे देवों के प्रासाद के सामने खड़े हो गये। तभी अनेक देव अपने प्रासाद से बाहर आये और आदर सहित स्थविर की वंदना की। देवों का तेज और प्रताप देखकर महास्थविर ने पूछा, "देवताओ, अपने पूर्वजन्म में कौन-से कर्म करके आपलोगों ने इतना महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है?"

अपने छोटे से कर्म की याद करके एक देवता ने ससंकोच कहा, "भंते, ऐसा कुछ न पूछें। हमने कोई महान कार्य नहीं किया है।"

आयुष्मान महामोग्गल्लान ने आग्रह किया, "फिर भी आप बतावें तो। कुछ तो ऐसा किया ही है जिससे आपको देवत्व प्राप्त हुआ है।"

"भंते, न तो मैंने कभी दान दिया, न पूजा की; न धर्म सुना, न ही ध्यान किया। हां, जीवन में कभी झूठ का सहारा नहीं लिया, कभी असत्य नहीं बोला। सदा सत्य की रक्षा की। इसी कारण मुझे देवत्व की प्राप्ति हुई है।"

फिर आगे बढ़ने पर महास्थविर प्रासाद के दरवाजे पर आने-जाने वाले देवगण एवं देव-कन्याओं से मिले। उन लोगों से भी महास्थविर ने उपर्युक्त प्रश्न किया। पहले के देवता की तरह उन लोगों ने भी प्रारंभ में कुछ बताने में संकोच किया। पर महास्थविर के आग्रह पर छिपा सकने में असमर्थ होने के कारण अंत में उन्हें भी बताना ही पड़ा। एक देवी ने बताया, "भंते, मैंने

अपने पूर्व-जीवन में न तो कभी दान दिया, न पूजा-अर्चना की। भगवान ककुसंध के शासनकाल में एक घर में दासी का काम करती थी। मेरी स्वामिनी बड़ी कठोर एवं चंड प्रकृति की थी। वह केवल गाली-गलौज करके नहीं छोड़ती थी। मुझे मारती-पीटती भी थी, वह भी लकड़ी के कुंदे से। इस पर मुझे बहुत क्रोध आता था। इससे मैं बड़ी परेशान और बेचैन रहती थी। मैं डरती रहती थी कि वह मुझे आग से दाग न दे, कहीं मेरा सिर न फोड़ दे। तब मैंने अपने मन को समझाना शुरू किया, 'हे मन, क्रोध न कर। क्रोध से तेरा ही नुकसान है। इसे सहन कर।' फिर धीरे-धीरे मैं क्रोध को वश में करने लगी। अंत में वह चाहे जो कुछ कहती-करती, पर मुझे तनिक भी क्रोध न आता। मैंने क्रोध पर एकदम नियंत्रण कर लिया। भंते, इसी के फलस्वरूप मैं देवलोक में जन्मी हूं।" एक अन्य देवी ने बताया, "भंते, पूर्वजन्म में मैं गन्ने के खेत की रखवाली किया करती थी। एक दिन उधर से एक भिक्षु जा रहा था। मैंने प्रसन्नमन उसे एक गन्ना दिया। उसी दान के कारण मुझे इस जन्म में यह लोक प्राप्त हुआ है।"

इसी प्रकार अन्य देवों और देव-कन्याओं ने अपने-अपने बारे में बताया। किसी ने एक फल दान की बात कही, किसी ने एक मुट्ठी कंदमूल, किसी ने एक खीरा, तो किसी ने कुछ पेय पदार्थ और किसी ने केवल अंजलिभर फूल प्रसन्नचित्त हो दान देने की बात कही। इस प्रकार इन सबने अपने-अपने छोटे-मोटे दान की बात कही, जिनके कारण उन्हें देवलोक की प्राप्ति हुई।

जेतवन लौटने पर महास्थविर ने देवों और देवकन्याओं के साथ हुए वार्तालाप की चर्चा भगवान से की। बोले, "भंते, क्या केवल सत्य-भाषण या अक्रोध या खीरा, फूल जैसे तुच्छ दान से भी देवत्व प्राप्त किया जा सकता है?" "मोग्गल्लान, देवों ने तुझसे जो कुछ कहा वह सच है। सत्य बोलने, क्रोध न करने और साधु संतों को प्रसन्नचित्त थोड़ा-भी देने पर दिव्यलोक प्राप्त किया जा सकता है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।"

सच बोले, न क्रोध करे, दे प्रसन्नमन दान।
थोड़ा भी दे वस्तु तो, मिले दैव स्थान॥

पुण्यवान का अभिनंदन

वाराणसी में श्रद्धासंपन्न कुल में नन्दिय नाम का पुत्र पैदा हुआ। माता-पिता के अनुरूप ही वह भी श्रद्धासंपन्न था। संघ की सेवा में लगा रहता था। उसके बड़ा होने पर माता-पिता ने रेवती नामक कन्या से उसका विवाह करना चाहा। लेकिन वह श्रद्धावान नहीं थी, दानशील भी नहीं थी। इसलिए नन्दिय ने उसे स्वीकार नहीं किया। अब उसकी माता ने रेवती से कहा – "बेटी, तुम इस घर में भिक्षु-संघ के बैठने के स्थान को लीपकर आसन लगाओ, आसन की व्यवस्था करो। भिक्षु-संघ के आने पर उनका पात्र लेकर उनके पीने के लिए शुद्ध जल भरो। उनके भोजन कर लेने के बाद उनके पात्रों को धोओ। इस प्रकार भिक्षु-संघ की सेवा करने पर तुम मेरे पुत्र के लिए स्वीकार्य हो सकती हो।"

रेवती ने वह सब कुछ किया जो मां ने कहा। रेवती के इस आचरण के बारे में मां ने अपने बेटे को बताते हुए उसे स्वीकार करने के लिए कहा। पुत्र ने मां का आदेश शिरोधार्य किया। नन्दिय और रेवती का विवाह हो गया।

विवाह के उपरांत घर लाने पर नन्दिय ने अपनी पत्नी रेवती को सचेत किया, "यदि भिक्षु-संघ और माता-पिता की ठीक से सेवा करोगी तभी मेरे साथ रह सकोगी। इसमें किसी प्रकार का प्रमाद न करना।" उसने 'ठीक है' कह सहमत हो कुछ दिनों तक श्रद्धावान हो पति की सेवा करते हुए दो पुत्रों को जन्म दिया। माता-पिता की मृत्यु के बाद नन्दिय घर की सारी संपत्ति का मालिक बना। अति श्रद्धा-भक्ति के साथ नन्दिय ने भिक्षु-संघ के भोजन-दान के लिए अपने घर के द्वार खोल दिये। दरिद्रों तथा यात्रियों के लिए भी उसके घर से भोजन दिया जाने लगा। शास्ता के धर्मोपदेश से प्रभावित नन्दिय ने इसिपतन (ऋषिपत्तन) सारनाथ में बुद्धप्रमुख भिक्षु-संघ के लिए आराम बनवा कर जैसे ही तथागत को समर्पित किया, वैसे ही तावतिंस देवलोक में उसके लिए एक विशाल सात रतनमय दिव्य प्रासाद बनकर तैयार हो गया।

एक दिन महास्थविर महामोग्गल्लान चारिका करते हुए जब तावतिंस देवलोक पहुँचे तब उस प्रासाद के निकट आते हुए देवपुत्रों से पूछा – यह अप्सरागण परिवृत्त दिव्यप्रासाद किसके लिए उत्पन्न हुआ है? उन देवपुत्रों ने आयुष्मान महामोग्गल्लान को बताते हुए यह कहा – "भंते! जिस नन्दिय नामक गृहपति पुत्र ने इसिपतन में शास्ता को विहार बनवा कर दिया, उसी के लिए यह प्रासाद उत्पन्न हुआ है। हम सब उनकी सेवा के लिए यहां नियुक्त हैं। उनको यहां न पाकर हमलोग बेचैन हैं। उनको देखने के लिए हम उत्सुक हैं।"

"भंते! जैसे कोई मिट्टी के पात्र को फेंककर सोने का पात्र पा जाय वैसे ही नन्दिय मनुष्य-लोक छोड़ कर देवलोक में आ रहा है। वह अपने कुशल कर्मों के कारण मानुषी-संपत्ति के स्थान पर दिव्य-संपत्ति का अधिकारी हो गया है। भंते, आप जाकर उसे जल्दी से यहां आने के लिए कहिए।"

महास्थविर ने वहां से आकर शास्ता के पास जाकर पूछा – "भंते! मनुष्यलोक में रहने वाले का जिसने कल्याण किया हो, क्या उसके लिए दिव्यसंपत्ति उत्पन्न होती है?"

भगवान ने महास्थविर को कहा – "मोग्गल्लान! क्या तुमने देवलोक में नन्दिय के लिए उत्पन्न दिव्यसंपत्ति को स्वयं नहीं देखा, मुझसे क्यों पूछते हो?"

इस पर आयुष्मान महामोग्गल्लान ने अपनी सहमति जतलायी। जैसे दीर्घ प्रवास से पुत्र या भाई को आते देख ग्रामद्वार पर स्थित कोई शीघ्रता से घर आकर यह सूचित करे कि 'अमुक आये हैं', अब उसके रिश्तेदार हृष्ट-प्रहृष्ट शीघ्रता से बाहर निकल उसको यह कहकर अभिनंदन करें कि 'तात, आ गये, नीरोग तो हो', उसी प्रकार जिस स्त्री या पुरुष ने कल्याण का काम किया है इस लोक को छोड़कर जब वह परलोक जाता है तो दस प्रकार की भेंट लेकर देवता यह कहते हुए कि 'मैं पहले, मैं पहले' उसके स्वागत के लिए आतुर रहते हैं।

दीर्घ प्रवास से फिरे बंधु का, स्वागत होता जैसे।
सत्कर्मी का वंदन करते, स्वर्ग-निवासी वैसे॥

पापेच्छ

मार को फटकार

एक समय आयुष्मान महामोग्गल्लान भग्ग (भर्ग) देश में सुंसुमारगिरि के भेसकलावन मृगदाय में विहार कर रहे थे। उस समय पापी मार उनकी कुक्षि में जा घुसा। इस पर आयुष्मान महामोग्गल्लान को ऐसा हुआ – अरे क्यों मेरा पेट उड़द-भरा सा गुड़गुड़ा रहा है। तब आयुष्मान ने अपने मन में इसका कारण खोजने पर पापी मार को अपनी कुक्षि में घुसा पाया। उन्होंने पापी मार को फटकार लगाते हुए कहा – 'निकल पापी! तथागत या तथागत के श्रावक को मत सता। कहीं यह कार्य चिरकाल तक तेरे लिए अहितकर, दुःखकर न हो जाय।' तत्पश्चात आयुष्मान महामोग्गल्लान की फटकार से पापी मार उदास हो वहीं अंतर्धान हो गया। ध्यान देने की बात है कि उन्होंने क्रुद्ध होकर अन्य ऋषियों-मुनियों की तरह कोई शाप नहीं दिया ।

ऐसे प्रकरणों से स्पष्ट होता है कि आयुष्मान की दृष्टि कितनी पैनी वा प्रखर थी!

दुष्ट का संग नहीं

एक समय महास्थविर महामोग्गल्लान राजगीर के पास किसी अरण्य-कुटी में विहार कर रहे थे। उसी समय वहां पर नगर की ओर से एक चोर आया। एक घर में सेंध मार कर उसने काफी बहुमूल्य सामान बटोर लिया था। उसने सोचा कि भिक्षु की यह कुटी उसके छिपने के लिए सुरक्षित स्थान है। अतः वह उसी कुटिया के सामने लेट गया।

कुटी से बाहर निकलने पर महास्थविर ने उस चोर को सामने सोया देखा। उस अजनबी से बातचीत करने पर उससे उचित उत्तर नहीं मिला। स्थविर को उसके बारे में शंका होने लगी, "यह आदमी ठीक नहीं लगता है।

ऐसे संदेहास्पद व्यक्ति को अपनी कुटी के पास रहने देना उचित नहीं। अनिश्चित चरित्र वाले व्यक्ति का संग अकरणीय है।"

"यहां मत सो, कहीं और जा", कह महास्थविर ने उसे वहां से खदेड़ दिया। थोड़ी देर में हाथ में मशाल लिए कुछ नगरवासी चोर के पदचिह्न देखते हुए कुटी के पास तक आ पहुँचे। उन्होंने चोर के ठहरने, बैठने और सोने के स्थान का निरीक्षण किया। वहां से चोर किधर और कहां गया इसका उन्हें कोई भी सुराग नहीं मिला। नागरिकों ने ढूंढ़ने का बहुत प्रयास किया, पर कोई चिह्न दिखायी न पड़ा। इधर-उधर देखकर थोड़ी देर बाद वे वापस लौट गये। अगले दिन आयुष्मान महामोग्गल्लान ने भगवान से पूरा हाल कह सुनाया। भगवान ने एक जातक कथा सुनाते हुए निम्नांकित गाथा द्वारा स्थविर के किये का अनुमोदन किया;

"सङ्केय्य सङ्कितब्बानि, रक्खेय्यानागतं भयं।
अनागतभया धीरो, उभो लोके अवेक्खती"ति॥

– जातक १.४.४४, पुचिमन्दजातक

शंकास्पद बातों में, शंका करते धीर।
भावी भय से स्वयं की, रक्षा करते वीर॥

विकट क्रोध का दुष्परिणाम

एक समय आयुष्मान महामोग्गल्लान ने आयुष्मान लक्खण के साथ गिद्धकूट (गृध्रकूट) पर्वत से उतरते समय अपने दिव्य चक्षु से एक विशालकाय अजगर प्रेत को देखा। उसके सिर से अग्नि-ज्वाला उठकर उसके आखिरी छोर तक जाती थी, फिर वहां से उठकर उल्टे उसके सिर तक आती थी और दोनों जगह से उठकर बीच में जाती थी। थेर उसको देखकर मुस्कराये। आयुष्मान लक्खण द्वारा इसका कारण पूछे जाने पर उन्होंने यह कहा – "आवुस, इस प्रश्न का उत्तर देने का समय अभी नहीं है, शास्ता के निकट पूछना।"

इसके उपरांत वे राजगीर में भिक्षाचार कर जब शास्ता के निकट पहुँचे तब आयुष्मान लक्खण द्वारा पूछे जाने पर आयुष्मान महामोग्गल्लान ने कहा – 'वहाँ आवुस! मैंने एक प्रेत देखा था। उसका व्यक्तित्व ऐसा था जिसको देखकर मैं यह सोचकर कि इसके पहले मैंने ऐसा व्यक्तित्व वाला नहीं देखा था मुस्करा दिया था।'

थेर की बात को प्रमाणित करते हुए शास्ता ने कहा – "मेरे द्वारा भी यह प्रेत बोधिमंड पर देखा गया था। मैंने पहले इसे नहीं कहा क्योंकि मेरी बात पर विश्वास नहीं करने वाले का अहित होता। अब जबकि मोग्गल्लान इसका साक्षी है तो कहता हूँ।'

भिक्षुओं द्वारा उसके पूर्वकर्म के बारे में पूछे जाने पर भगवान ने उस पर भी प्रकाश डाला। उन्होंने विस्तार से बतलाया कि क्रोध पर आधारित किस पापकर्म के फलस्वरूप वह प्रेत इस कष्टप्रद स्थिति में से गुजर रहा है।

भगवान ने अंत में यह प्रज्ञप्त किया कि जैसे ताजा दुहा हुआ दूध विपरिणाम को प्राप्त नहीं करता, वैसे ही पापकर्म का फल तुरंत नहीं मिलता। मूर्ख को वह वैसे ही जलाता है जैसे राख से ढँकी आग जलाती है। राख से ढँकी आग को लोग आग नहीं समझते, पर छूने पर तो वह जलाती ही है।

न हि पापं कतं कम्मं, सज्जु खीरंव मुच्चति ।
डहन्तं बालमन्वेति, भस्मच्छन्नोव पावको'ति ।।

– धम्मपद ७१, बालवग्ग

नहीं जानता मूर्ख, किये अपने पापों का हाल।
जलता है उनके विपाक पर, होता है बेहाल॥

गो-हत्या का दुष्फल

एक समय भगवान राजगीर में वेळुवन कलंदकनिवाप में विहार करते थे। उस समय आयुष्मान लक्खण और आयुष्मान महामोग्गल्लान गृध्रकूट पर्वत पर विहार करते थे। तब आयुष्मान महामोग्गल्लान पूर्वाह्न समय चीवर

पहन और पात्र ले आयुष्मान लक्खण के पास गये। जाकर आयुष्मान लक्खण से बोले – आवुस लक्खण! चलें, राजगीर में भिक्षाटन के लिए चलें।

'आवुस, बहुत अच्छा' कहकर आयुष्मान लक्खण ने आयुष्मान महामोग्गल्लान को उत्तर दिया। गृध्रकूट से नीचे उतरते हुए एक स्थान पर आयुष्मान महामोग्गल्लान मुस्करा दिये। तब आयुष्मान लक्खण उनसे बोले – 'आवुस! आप क्यों मुस्कराये?"

महास्थविर ने कहा, "आयुष्मान, प्रश्न पूछने का यह उचित काल नहीं है। यह प्रश्न भगवान के सामने पूछना चाहिए।"

भिक्षाटन से लौटकर भोजन कर लेने के बाद दोनों भिक्षु भगवान के पास पहुँचे और उनका अभिवादन कर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठ, आयुष्मान लक्खण आयुष्मान महामोग्गल्लान से बोले – "गृध्रकूट से नीचे उतरते समय आप एक स्थान पर मुस्करा दिये थे। आवुस! आपके मुस्कराने का क्या कारण था?"

"आयुष्मान, गृध्रकूट पर्वत से उतरते समय मैंने हड्डियों के एक कंकाल को आकाशमार्ग से जाते देखा था। उसे गीध भी, कौए भी और चील भी चारों ओर से झपट रहे थे, नोच रहे थे, खींच रहे थे, टुकड़े-टुकड़े कर रहे थे और वह आर्त्तस्वर में कराह रहा था। उसे देखकर मेरे मन में बड़ा आश्चर्य हुआ। भला ऐसे भी प्राणी होते हैं।"

तब भगवान ने भिक्षुओं को आमंत्रित किया – "भिक्षुओ! मेरे श्रावक खुली आंख विहार करते हैं, ज्ञान के साथ विहार करते हैं। मेरे श्रावक ऐसे भी जान लेते हैं, देख लेते हैं, साक्षात्कार कर लेते हैं।

"भिक्षुओ! पहले मैंने भी उस सच्चाई को देखा था, पर किसी से नहीं कहा, क्योंकि मेरे बताने पर जो विश्वास नहीं करते उनका चिरकाल तक अहित होता, वे बहुत ही दुःख में पड़ जाते।

"भिक्षुओ! वह सत्त्व इसी राजगीर में गो-हत्या करने वाला था। इस पाप के परिणामस्वरूप लाखों वर्षों तक नरक में पचता रहा। उसकी ऐसी अवस्था उसके पापकर्म का अंतिम फल था।"

भिक्षुओं ने आश्चर्यान्वित हो भगवान के कथन का अनुमोदन किया, अभिनंदन किया।

चाहे जैसे नाम तो हुआ!

एक रात धर्मदेशना के वाद शास्ता अपनी गंधकुटी में विश्राम के लिए चले गये। धर्मसेनापति (सारिपुत्त) शास्ता को प्रणाम कर थोड़ी देर के लिए अपने परिवेण में गये। आयुष्मान महामोग्गल्लान भी अपने परिवेण में जा, वहां थोड़ी देर विश्राम कर स्थविर के पास चले आये और प्रश्न पूछने लगे। जो-जो प्रश्न पूछा जाता धर्मसेनापति आकाश में चंद्रमा को उठाते हुए से उसका उत्तर देकर समझा देते। चारों प्रकार की परिषद वैठी धर्म सुनती रही।

इसी वीच एक वृद्ध स्थविर के मन में यह दूषित विचार आया, "यदि मैं इस सभा में सारिपुत्त से कोई प्रश्न पूछ कर उसे चकरा दूं तो मुझे भी परिषद वहुश्रुत समझेगी और इससे मेरा आदर-सत्कार वढ़ जायगा।" ऐसा सोचकर वह उठा और आयुष्मान सारिपुत्त के पास जाकर एक ओर खड़ा हो वोला, "आयुष्मान सारिपुत्त! मैं भी एक प्रश्न पूछना चाहता हूं। मुझे अनुमति दें – आयुष्मान, लपेटने के वारे में, उधेड़ने के वारे में अपना निश्चय कहें।"

धर्मसेनापति सारिपुत्त ने उसकी ओर देखकर सोचा, "यह वूढ़ा कुछ नहीं जानता। अपनी इच्छाओं के वशीभूत है और एकदम मूढ़ है।" वे उससे विना कुछ वातचीत किये शरमाये हुए, पंखे को रखकर आसन से उतर परिवेण में चले गये। मोग्गल्लान स्थविर भी अपने परिवेण में चले गये।

लोगों ने उस वूढ़े का पीछा किया – पकड़ो इस वूढ़े को, इसने हमें मधुर धर्मोपदेश नहीं सुनने दिया। वह तेजी से भागता हुआ विहार के सिरे पर एक दरार फटे पाखाने में गिर पड़ा और गंदगी से पुत गया। उसकी यह

हालत देखकर लोगों को उससे घृणा होने लगी। सभी श्रावक शास्ता के पास पहुँचे और उन्हें पूरा हाल कह सुनाया।

भगवान ने कहा, "भिक्षुओ, न केवल अभी यह वूढ़ा अपने वल का सही अनुमान न लगाकर महावलवान के साथ जूझकर गूह में लिवड़ा है, वल्कि अपने पूर्वजन्म में भी उसने ऐसा ही किया था।" श्रावकों के निवेदन पर भगवान ने पूर्वजन्म की घटना वतायी –

प्राचीन काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय वोधिसत्त्व सिंह होकर पैदा हुए और हिमालय प्रदेश में एक पर्वत-गुफा में रहने लगे। उस गुफा के निकट ही एक तालाव था जिसके पास वहुत से सूअर रहते थे। एक दिन वोधिसत्त्व सिंह अपना शिकार कर, उसका मांस खाकर, तालाव में पानी पीकर ऊपर आया। उसी समय एक मोटा सूअर तालाव के आसपास चर रहा था। पेट भरा होने के कारण सिंह ने उस पर आक्रमण नहीं किया। विना सूअर के देखे सिंह धीरे से निकल जाना चाहता था। सिंह को चुपके से जाते देखकर सूअर ने सोचा, "यह सिंह मुझसे भयभीत होकर चुपके से भागा जा रहा है। आज मुझे इससे अवश्य जूझना चाहिए।" उसने अपना सिर उठाकर सिंह को युद्ध के लिए ललकारा, "वनराज, क्यों दुम दवाकर भागे जा रहे हो?"

सिंह ने उसे उत्तर दिया, "मित्र, आज मैं तेरे साथ युद्ध नहीं कर सकता। आज के सातवें दिन यहीं संग्राम होगा।" ऐसा कहकर वोधिसत्त्व सिंह चलता वना।

सूअर इस वात से अति प्रसन्न हुआ कि वह सिंह के साथ युद्ध करेगा। उसने अपने सभी रिश्तेदारों और मित्रों को यह वात वता दी। सूअर की वात सुनकर वे सब वहुत डरे और वोले, "अव तू हम सभी का विनाश करायगा। अपने वल को न समझकर तू सिंह से भिड़ना चाहता है? हम सभी मारे जायेंगे। तू ऐसा दुस्साहस न कर।"

भयभीत सूअर ने सवसे पूछा, "तो, अव क्या करूं?" उन्होंने एक उपाय वताया, "मित्र, तू वहां जा जहां तपस्वी लोग मल-मूत्र त्यागते हैं।

लगातार सात दिनों तक वहां की गंदगी अपने शरीर में खूब लपेट कर सुखा ले। सातवें दिन अपने शरीर को गीला कर हवा का रुख देखकर, जिधर से हवा बह रही हो उधर खड़े हो जाना। तेरे शरीर की दुर्गंधयुक्त हवा सूंघ कर सिंह सरक जायगा, क्योंकि सिंह सफाईपसंद होता है।"

सूअर ने वैसा ही किया। सातवें दिन युद्धस्थल पर पहुँच गया। उसके शरीर से दुर्गंध आती जानकर बोधिसत्त्व सिंह ने कहा, "मित्र, तूने अच्छा उपाय सोचा। लगता है अपने शरीर पर तूने गूह पोत रखा है। न तो मैं तुझे मुँह से चीर सकता हूं, न पैरों से ही तेरे ऊपर आक्रमण कर सकता हूं। इसलिए मैं तुझे विजयी मानता हूं। मैं पराजित हुआ।"

प्रसन्नमन सूअर ने अपने संबंधियों से बताया, "मित्रो, तुम्हारा उपाय कारगर सिद्ध हुआ। सिंह मैदान छोड़कर हट गया। मेरी जीत हो गयी।" वे डरे कि फिर किसी दिन आकर सिंह हम सबको जान से मार डालेगा। वे भागकर किसी दूसरी जगह चले गये।

शास्ता ने यह धर्मदेशना देकर जातक का मेल बैठाया। उस समय सूअर यह वृद्ध स्थविर था। सिंह तो मैं ही था।

संघ में फूट

एक दिन उपोसथ से उठ कर देवदत्त ने भगवान के सामने अपनी पांच मांगें रखीं। भगवान ने इन्हें अस्वीकार कर दिया। इस पर उसने अवसर का लाभ उठाया और हाल ही में प्रव्रजित हुए पांच सौ भिक्षुओं को अपने पक्ष में कर लिया। तब तक इन भिक्षुओं को धर्म और विनय की वास्तविक समझ भी नहीं हुई थी। इस प्रकार देवदत्त संघ को फोड़ इन पांच सौ भिक्षुओं को अपने साथ लेकर गयासीस के पास चला गया। इस घटना के पश्चात आयुष्मान सारिपुत्त और आयुष्मान महामोग्गल्लान भगवान के पास गये। आयुष्मान सारिपुत्त ने भगवान से कहा - "भंते, देवदत्त संघ को फोड़कर पांच सौ नये भिक्षुओं को साथ लेकर गयासीस के पास चला गया है।"

भगवान ने कहा, "आयुष्मानो, उन नये भिक्षुओं पर तुम लोगों को दया नहीं आयी? वे किस विपत्ति में जा फँसे? उन पर किसी प्रकार की आपत्ति आवे, इससे पूर्व तुम लोग जाओ और उन्हें किसी तरह बचाओ।"

शास्ता के निर्देश पर दोनों महास्थविर गयासीस की ओर चल पड़े। वहां पहुँचने पर उन लोगों ने देखा कि एक बड़ी परिषद के बीच में बैठकर देवदत्त धर्मोपदेश कर रहा है। दूर से ही स्थविर सारिपुत्त और महामोग्गल्लान को आते देखकर देवदत्त ने भिक्षुओं से कहा, "भिक्षुओ, देखो मेरा धर्म कितना सुस्पष्ट और सुआख्यात है! श्रमण गौतम के दोनों अग्रश्रावक – सारिपुत्त और महामोग्गल्लान – मेरे पास आ रहे हैं। वे दोनों ही श्रमण गौतम को छोड़कर अब मेरा धर्म मानने लगे हैं।"

ऐसा कहने पर भिक्षु कोकालिक ने देवदत्त को सचेत किया, "आयुष्मान देवदत्त, सारिपुत्त और महामोग्गल्लान पापेच्छ और बुरी नीयत वाले हैं। इन पर तनिक भी विश्वास न करें।"

"नहीं आयुष्मान, ऐसा न कहो। उनका स्वागत है, क्योंकि मुझमें और मेरे धर्म में उनकी श्रद्धा है।" ऐसा कहकर देवदत्त ने अपने आसन के आधे भाग पर बैठने हेतु सारिपुत्त को आमंत्रित किया, "आवुस सारिपुत्त, यहां आओ।" पर आयुष्मान सारिपुत्त दूसरा आसन लेकर एक ओर बैठ गये। आयुष्मान महामोग्गल्लान भी एक ओर अलग आसन लेकर बैठ गये।

बहुत रात तक देवदत्त भिक्षुओं को धर्मोपदेश करता रहा। फिर शास्ता की नकल करते हुए आयुष्मान सारिपुत्त से बोला, "आवुस, इस समय भिक्षु आलस्य और प्रमाद रहित हैं। तुम भिक्षुओं को धर्मदेशना करो। मेरी पीठ दुख रही है। मैं अब आराम करूंगा।"

तब देवदत्त चौपेती संघाटी को बिछाकर दाहिनी बगल से लेट गया। स्मृति-रहित, संप्रज्ञानरहित होने से उसे मुहूर्त भर में ही निद्रा आ गयी। तब आयुष्मान सारिपुत्त ने आदेशना एवं अनुशासनीय प्रातिहार्यों के साथ और आयुष्मान महामोग्गल्लान ने ऋद्धि-प्रातिहार्य के साथ भिक्षुओं को धर्मोपदेश किया। उनकी देशना से सभी भिक्षुओं को विरज-विमल धर्म-चक्षु उत्पन्न

हुआ – जो कुछ समुदयधर्मा (उत्पन्न होने वाला) है, वह निरोधधर्मा (विनष्ट होने वाला) है। आयुष्मान सारिपुत्त ने भिक्षुओं को निमंत्रित किया – "आवुसो! चलो भगवान के पास चलें। जिसे भगवान का धर्म पसंद हो, वह हमारे साथ चले।" इस पर सभी पांच सौ भिक्षु स्थविर सारिपुत्त और महामोग्गल्लान के साथ भगवान के पास वेळुवन की ओर चल पड़े।

भिक्षु कोकालिक ने देवदत्त को उठाया – "आवुस! देवदत्त! उठो, मैंने कहा था न कि सारिपुत्त, मोग्गल्लान का विश्वास मत करो।" तब देवदत्त को वहीं मुख से गर्म खून निकल पड़ा। उधर आयुष्मान सारिपुत्त और आयुष्मान महामोग्गल्लान पांच सौ भिक्षुओं के साथ भगवान के पास जा पहुँचे। उन्होंने भगवान से निवेदन किया, "भंते, यहां संघ से फूटकर जाने वाले इन भिक्षुओं को पुनः उपसंपदा देने की अनुकंपा करें।"

"नहीं सारिपुत्त, पहले वे अपने अपराध के लिए क्षमायाचना करें।" फिर भगवान के पूछने पर अग्रश्रावकों ने यह बताया कि किस प्रकार उन्होंने भिक्षुओं को पापेच्छ देवदत्त के चंगुल से छुड़ाया था।

कोकालिक - प्रकरण

भगवान के शिष्यों में कुछ ऐसे भी थे जो अग्रश्रावकों के प्रति ईर्ष्या और द्वेषभाव रखते थे। इनमें से कोकालिक नामक एक भिक्षु था।

एक बार कोकालिक भिक्षु भगवान के पास आया और उनका अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। तब उसने भगवान से कहा – "भंते, सारिपुत्त और महामोग्गल्लान महापापेच्छ हैं, पाप-पूर्ण इच्छाओं के वशीभूत हैं।"

इस पर भगवान ने उसे कहा – "कोकालिक, ऐसा नहीं कहते। मन में भी ऐसा विचार न लाओ। सारिपुत्त और मोग्गल्लान के प्रति अपने मन में श्रद्धा लाओ। सारिपुत्त और मोग्गल्लान बड़े अच्छे हैं।"

दूसरी बार भी कोकालिक भिक्षु ने भगवान को कहा – "भंते! भगवान के प्रति मेरी बड़ी श्रद्धा और बड़ा विश्वास है। पर सारिपुत्त और महामोग्गल्लान पापेच्छ हैं, पाप-पूर्ण इच्छाओं के वशीभूत हैं।"

दूसरी बार भी भगवान ने उसे कहा – "कोकालिक, ऐसा नहीं कहते। मन में भी ऐसा विचार न लाओ। सारिपुत्त और मोग्गल्लान के प्रति अपने मन में श्रद्धा लाओ। सारिपुत्त और मोग्गल्लान बड़े अच्छे हैं।"

भगवान के सामने उसने तीन बार अग्रश्रावकों पर दोषारोपण किया। भगवान ने उसे तीनों बार मना किया और समझाया। फिर उसने आसन छोड़ तथागत को प्रणाम कर उनकी प्रदक्षिणा की और वहां से चला गया।

वहां से आने के बाद ही, कोकालिक भिक्षु के शरीर पर सरसों के बराबर फोड़े उठ आये। धीरे-धीरे वे बढ़ने लगे। सरसों से मूंग, मूंग से मटर, मटर से बेर, बेर से आंवला और फिर आंवला से बेल के बराबर होते गये। वे धीरे-धीरे फूटने लगे। उनसे पीव और लहू की धार बहने लगी। अत्यंत पीड़ा के कारण वह कराह भी नहीं पा रहा था। इसी रोग से शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गयी।

अग्रश्रावकों के प्रति अपने मन में पापपूर्ण विचार भरे रहने के कारण मर कर वह पदुम नामक नरक में पैदा हुआ।

गुणों की खान

ऐसे कहते भगवान

वर्षावास के बाद पवारणा (वर्षावास के बाद होने वाला एक संस्कार) करके भिक्षु शास्ता के पास जाते। वर्षावास में किये अपने तप, साधना आदि के बारे में वे भगवान से बताते। वे कहते, "भंते, आपके पास कर्मस्थान लेकर मैंने सोतापत्ति-फल की प्राप्ति की, कोई कहता मैं अर्हत्व में प्रतिष्ठित हुआ...." इस प्रकार अपने द्वारा अर्जित गुणों के बारे में वे भगवान को अवगत कराते। भगवान से मिलकर जाने वाले भिक्षुओं को शास्ता अग्रश्रावकों के पास भेजते। उनसे कहते, "भिक्षुओ, सारिपुत्त और महामोग्गल्लान से अनुमति ले लो।"

भिक्षु बोलते, "भंते, क्यों हमलोग सारिपुत्त और महामोग्गल्लान से अनुमति लेंगे?"

पर भगवान उन दोनों अग्रश्रावकों के दर्शन के लिए भिक्षुओं को प्रेरित करते ही, "भिक्षुओ, सारिपुत्त और महामोग्गल्लान की संगति करो। वे ज्ञानी हैं, पंडित हैं। सहब्रह्मचारियों पर अनुग्रह करने वाले हैं। सारिपुत्त जन्म देने वाली जननी के समान हैं, तो महामोग्गल्लान पोषण करने वाली धात्री के समान। सारिपुत्त सोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित करते हैं तो महामोग्गल्लान निर्वाण में।"

अग्रश्रावकों की परस्पर स्तुति

एक समय आयुष्मान सारिपुत्त और आयुष्मान महामोग्गल्लान राजगीर के वेळुवन कलंदकनिवाप में एक ही जगह विहार करते थे। तब सायंकाल आयुष्मान सारिपुत्त आयुष्मान महामोग्गल्लान के पास गये और उनसे कुशल-क्षेम पूछकर एक ओर बैठ गये। आयुष्मान महामोग्गल्लान की प्रसन्न मुद्रा देखकर सारिपुत्त ने कहा, "आयुष्मान आपकी इंद्रियां विशेषरूप से

प्रसन्न और मुखवर्ण तेजयुक्त और परिशुद्ध लग रहा है। क्या आज आयुष्मान ने शांत विहार से विहार किया है?"

"आयुष्मान, आज मैंने ओलारिक विहार* से विहार किया है और धार्मिक कथा भी हुई है।"

"किसके साथ धार्मिक कथा हुई?" "आवुस! भगवान के साथ।" "भगवान के साथ क्या धर्मकथा हुई?" "आयुष्मान, मैंने भगवान से कहा – "भंते, आरब्धवीर्य-आरब्धवीर्य कहा जाता है; सो आरब्धवीर्य कैसे होता है? "आवुस! ऐसा कहे जाने पर भगवान बोले – 'मोग्गल्लान! भिक्षु इस प्रकार आरब्धवीर्य हो विहार करता है – त्वचा, नस और हड्डी ही भले बच जायं; शरीर से मांस और लहू भी भले ही सूख जायं; किंतु, पुरुष के उत्साह, वीर्य और पराक्रम से जो पाया जा सकता है उसे बिना पाये विश्राम नहीं लूंगा। मोग्गल्लान! इस तरह आरब्धवीर्य होता है।

"आवुस! भगवान के साथ मेरी यही धर्मकथा हुई।" महास्थविर महामोग्गल्लान के कथन का अनुमोदन करते हुए सहर्ष महास्थविर सारिपुत्त ने कहा, "जैसे पर्वतराज हिमालय के सामने कंकड़-पत्थर की अदनी ढेरी पड़ी हो, आयुष्मान महामोग्गल्लान के सामने हमारी वही स्थिति है। आयुष्मान, आप महाऋद्धिशाली, महानुभाव हैं। यदि संकल्प कर लें तो कल्प-भर भी ठहर सकते हैं।"

इस पर महास्थविर महामोग्गल्लान बोले, "आयुष्मान, जैसे नमक के एक बहुत बड़े ढेर के सामने नमक का एक अदना सा-कण पड़ा हो, वैसे ही आयुष्मान सारिपुत्त के सामने हम हैं। भगवान ने भी आयुष्मान सारिपुत्त की अनेक प्रकार से प्रशंसा की है।"

---

*ओलारिक विहार : दिव्य चक्षु तथा दिव्य श्रोत्र धातु से विहार करना ओलारिक विहार है क्योंकि इनके दोनों आलंबन रूप और शब्द ओलारिक हैं। भगवान के रूप दर्शन तथा उनकी वाणी को सुनने के लिए चक्षु और श्रोत्र को इस ध्यान से शुद्ध किया जाता है।

इस प्रकार, इन महानागों (=महावीरों) ने एक दूसरे के सुभाषित का अनुमोदन किया।

सिर पर यक्ष का प्रहार

एक समय भगवान राजगीर के वेळुवन कलंदकनिवाप में विहार कर रहे थे।

उस समय आयुष्मान सारिपुत्त और आयुष्मान महामोग्गल्लान को कपोत कंदरा में देखकर, एक यक्ष ने दूसरे यक्ष से कहा – "मित्र! मेरी इच्छा हो रही है कि इस श्रमण के सिर पर प्रहार दूं।"

उसके ऐसा कहने पर दूसरे यक्ष ने कहा, "मित्र! रहने दो। इस श्रमण से मत लगो। इसका तेज और प्रताप बड़ा महान है।"

दूसरी तथा तीसरी वार भी पहले यक्ष द्वारा आयुष्मान सारिपुत्त पर प्रहार करने के लिए पूछे जाने पर दूसरे यक्ष ने तीनों वार पहले यक्ष को प्रहार करने से मना किया।

तव पहले यक्ष ने दूसरे यक्ष के कहे हुए को न मान, आयुष्मान सारिपुत्त के सिर पर प्रहार कर ही दिया। उस प्रहार से सात या आठ हाथ ऊंचा हाथी भी गिर पड़ता, पर्वत-कूट भी चूर-चूर हो जाता। सो वह यक्ष 'जल रहा हूं, जल रहा हूं' कहते-कहते वहीं से घोर नरक में जा गिरा।

आयुष्मान महामोग्गल्लान ने अपने अलौकिक दिव्य विशुद्ध चक्षु से उस यक्ष को आयुष्मान सारिपुत्त के सिर पर प्रहार करते देख लिया। देखकर आयुष्मान सारिपुत्त के पास गये और उनसे वोले, "आवुस! कुशल तो है? कुछ कष्ट तो नहीं है?"

"आवुस मोग्गल्लान! विलकुल कुशल है; हां, मेरे सिर पर कुछ दर्द-सा प्रतीत होता है।"

"आवुस सारिपुत्त! वड़ा आश्चर्य है, वड़ा अद्भुत है! आप आयुष्मान सारिपुत्त का तेज और प्रताप वड़ा भारी है। किसी यक्ष ने आपके सिर पर

प्रहार किया। वह प्रहार भी ऐसा कड़ा कि उसके पड़ने से सात या आठ हाथ ऊंचा हाथी भी गिर पड़ता, पर्वत-कूट भी चूर-चूर हो जाता।"

"आवुस मोग्गल्लान! वड़ा आश्चर्य है, वड़ा अद्भुत है! आयुष्मान महामोग्गल्लान का तेज और प्रताप इतना वड़ा है कि यक्षों को देख लेते हैं, मैं तो कूड़ा-करकट के ढेर पर विचरण करने वाले छोटे पिशाच को भी नहीं देख पाता।"

भगवान ने अपने अलौकिक विशुद्ध दिव्य श्रोत्र से उन दो महानागों के इस कथा-संलाप को सुना।

इसे जान, उस समय उनके मुख से उदान के ये वचन निकल पड़े –

"यस्स सेलूपमं चित्तं, ठितं नानुपकम्पति।
विरत्तं रजनीयेसु, कोपनेय्ये न कुप्पति।
यस्सेवं भावितं चित्तं, कुतो तं दुक्खमेस्सती"ति॥

– उदान ३४, यक्खपहारसुत्त

"अनुरक्त नहीं होता राग के विपयों में,
चित्त जिसका रहता अचल किसी शिला के समान।
न करता क्रोध भी, क्रोध के विपयों में,
क्यों हो दुःखद उसे, जाना जिसने लगाना ध्यान।।"

पांच प्रकार के शास्ता

कोलियपुत्र ककुध आयुष्मान महामोग्गल्लान का उपस्थाक था। मृत्यु के पश्चात वह मनोमय काया (अरूप ब्रह्मलोक) में जन्मा। एक दिन वह आयुष्मान महामोग्गल्लान के पास आया और वोला –

"भंते! लौकिक समाधि द्वारा देवदत्त ने काफी ऋद्धियां अर्जित कर ली थीं। ज्योंही उसके मन में यह लालसा जगी कि वह भिक्षु-संघ की महंतई करे, नेतृत्व करे उसकी सभी ऋद्धि-शक्तियां क्षीण हो गयीं।"

आयुष्मान महामोग्गल्लान ने यह बात भगवान से कही। भगवान ने पूछा, "मोग्गल्लान! क्या तुमने ककुध देवपुत्र के चित्त की बात अपने चित्त से जांच ली है कि उसने जो कुछ कहा वह सत्य है?"

"हां भंते, मैंने जांच लिया है कि जो ककुध देवपुत्र कहता है वह सब सत्य है, झूठ नहीं है।" "मोग्गल्लान! इसे अपने पास ही रखो। किसी को यह बात मत कहो। देवदत्त स्वयं इसे प्रकट करेगा, अपनी पोल अपने आप खोलेगा।

"मोग्गल्लान! पांच प्रकार के शास्ता इस लोक में विद्यमान रहते हैं।

"कौन से पांच?

"मोग्गल्लान! कुछ शास्ता ऐसे हैं जिनका शील परिशुद्ध नहीं होता है, पर वे यह दावा करते हैं कि उनका शील परिशुद्ध है। उनको श्रावक इस प्रकार जानते हैं कि ये शास्ता अपरिशुद्ध शील वाले होकर भी अपने को परिशुद्ध शील वाला कहते हैं। अगर हम लोग इस बात को गृहस्थों को कह देंगे तो इनके लिए यह अच्छा नहीं होगा। जो इनके लिए अच्छा नहीं, उसे हम क्यों कहें? वे चीवर, पिंडपात, शयनासन, भैषज्य से हमारा सम्मान करते हैं। कोई जो करता है वही प्रकट होता है। मोग्गल्लान! इस प्रकार के शास्ता के शील का शिष्य संरक्षण करते हैं। इस प्रकार का शास्ता शिष्यों से अपने शील के संरक्षण की अपेक्षा रखता है।

"ठीक इसी तरह की बात आजीविका, धर्मदेशना, व्याकरण (भविष्य-कथन) तथा ज्ञान-दर्शन के बारे में भी है।

"मैं, मोग्गल्लान, परिशुद्ध शील वाला होकर 'परिशुद्ध शीलवाला हूं' यह दावा करता हूं। मेरे शील का मेरे शिष्य संरक्षण नहीं करते, मैं शिष्यों से अपने शील के संरक्षण की अपेक्षा नहीं करता। यही बात परिशुद्ध आजीविका, परिशुद्ध धर्मदेशना, परिशुद्ध व्याकरण (भविष्य-कथन) तथा परिशुद्ध ज्ञान-दर्शन के बारे में भी लागू होती है।"

निष्कासन पर भी समताभाव

विहारों में मौन, शांत वातावरण बनाये रखने के लिए भगवान बहुत सजग रहते थे। जहां तक एक-एक साधक धीमी आवाज में परस्पर धर्म-संबंधी प्रश्न पूछते और उत्तर देते, वहां तक विहार का वातावरण साधना के अनुकूल बना रहता था। परंतु जहां एक-से-अधिक लोग एक-साथ, जोर-जोर से बोलने लगते, वहां हंगामा-सा मच जाता था। ऐसा होने पर धर्म-साधना के विहारों में और अन्य सांप्रदायिक आश्रमों में कोई अंतर नहीं रह जाता था। ध्यान के विहार का वातावरण भी उसी अधोगति को प्राप्त हो जाता था। इसलिए इस क्षेत्र में अपराध करने वाला जो भी हो, भगवान के लिए वह अक्षम्य ही होता था।

यह नियम केवल शहरों के समीप स्थित विहारों पर ही नहीं लागू होता था, प्रत्युत शहर से दूर वन में भी, जहां साधक भिक्षु ध्यान करते थे, उसे मौन और शांत बनाये रखना आवश्यक माना जाता था। बतरस के लोभी भिक्षुओं को सांसारिक वार्त्ता से दूर रहने के लिए भगवान द्वारा अनेक बार फटकार लगायी गयी।

भगवान एक बार शाक्य जनपद गये हुए थे। वहां चातुमा के आमलकी वन में भगवान विहार कर रहे थे। वहां सारिपुत्त और महामोग्गल्लान के साथ आये हुए पांच सौ नये-नये प्रव्रजित भिक्षु मछली-बाजार सा हल्ला-गुल्ला करने लगे। यह देखकर आश्चर्य होता है कि इस अपराध के लिए भगवान ने सारिपुत्त और महामोग्गल्लान जैसे अग्र महाश्रावकों को भी नहीं बख्शा। उन्हें भी वैसा ही दंड देते हुए बोले – "चले जाओ, भिक्षुओ ! मैं तुम्हें यहां से निकालता हूं। तुम मेरे साथ मत रहो।"

भगवान का मतलब साफ था। वे भगवान के साथ रहने के लायक नहीं थे। जो अपने साथियों को मौन न रख सके, वे चाहे अग्र महाश्रावक ही क्यों न हों, मौन-प्रेमी भगवान के साथ रहने लायक नहीं थे। अपने साथियों सहित भगवान को नमन कर उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर दोनों अग्र महाश्रावक भगवान से दूर चले गये।

चारों ओर सन्नाटा छा गया। भगवान के दाहिने और बायें हाथ-सदृश सारिपुत्त और महामोग्गल्लान मौन तोड़ने के अपराध में विहार से निकाल दिये गये। ध्यान-स्थली के नियमों का पालन करना नितांत आवश्यक था। कोई नियम भंग करेगा, तो भगवान अनुशासन की कार्यवाही करेंगे ही।

सारिपुत्त और मोग्गल्लान के बिना धर्म-प्रसारण का काम सुचारु रूप से कैसे चलेगा?

इसी चिंता से ग्रस्त चातुमा के शाक्य भिक्षुओं की सिफारिश लेकर भगवान के पास आये और कुछ देर के बाद सहम्पति ब्रह्मा भी भगवान के पास आ प्रकट हुए और उन निकाले गये भिक्षुओं की सिफारिश करते हुए बोले – "भंते, भगवान भिक्षु-संघ पर प्रसन्न हों। भंते, भगवान, भिक्षु-संघ से बातचीत करें।

"भंते भगवान, ये नये-नये प्रव्रजित भिक्षु हैं। भगवान का सान्निध्य नहीं पायेंगे तो मुरझा जायेंगे। जैसे नये-नये अंकुरित पौधे जल न मिलने से मुरझा जाते हैं, जैसे नन्हा बछड़ा अपनी मां को न देखने से मुरझा जाता है।"

इस पर भगवान ने निष्कासित भिक्षुओं को पुनः लौट आने की अनुमति दी। निष्कासन का दंड सदा के लिए लागू नहीं होता। उपयुक्त समय देख कर भगवान उसे वापिस ले लिया करते थे। यदि वे समय-समय पर ऐसे दंड न देते तो ध्यान-केंद्रों का अनुशासन कैसे कायम रह पाता?

एक ओर बैठे स्थविर महामोग्गल्लान से भगवान ने पूछा, "मोग्गल्लान, मेरे द्वारा भिक्षु-संघ को निकाल देने पर तुझे कैसा लगा?" "भंते, जब भगवान ने भिक्षु-संघ को बाहर निकाला तब मुझे ऐसा लगा कि अब भगवान इष्ट धर्म-सुख से युक्त होकर विहरेंगे और आयुष्मान सारिपुत्त और मैं भिक्षु-संघ की देख-रेख करेंगे।"

"साधु मोग्गल्लान, साधु! भिक्षु-संघ की रक्षा चाहे मैं करूं या तुम और सारिपुत्त।"

इसके उपरांत भगवान ने इन भिक्षुओं को प्रव्रज्या में आने वाले संकटों के बारे में संबोधित किया।

आयुष्मान वङ्गीस की संस्तुति

एक समय भगवान पांच सौ केवल अर्हत भिक्षुओं के साथ इसिगिलि (ऋषिगिरि) के पास कालसिला पर विहार करते थे। उस समय आयुष्मान महामोग्गल्लान ने अपने चित्त से उन सभी भिक्षुओं के चित्त को विमुक्त और उपाधिरहित हुआ जान लिया।

आयुष्मान महामोग्गल्लान द्वारा ऐसा जान लेने पर आयुष्मान वङ्गीस के मन में यह आया कि आयुष्मान महामोग्गल्लान के इस गुण की प्रशंसा भगवान के सम्मुख उचित रीति से होनी चाहिए। तब आयुष्मान वङ्गीस ने कहा –

(१)

नगस्स पस्से आसीनं, मुनिं दुक्खस्स पारगुं।
सावका पयिरुपासन्ति, तेविज्जा मच्चुहायिनो॥

– पर्वत के पार्श्व पर विराजमान, दुःखों के पार चले गये महामुनि (बुद्ध) की त्रैविद्य और मृत्युविजेता शिष्य उपासना कर रहे हैं।

(२)

चेतसा अनुपरियेति, मोग्गल्लानो महिद्धिको।
चित्तं नेसं समन्वेसं, विप्पमुत्तं निरूपधिं॥

– महान ऋद्धि वाले महामोग्गल्लान अपने चित्त से इन सभी के विमुक्त और उपाधिरहित चित्त को जान रहे हैं।

(३)

एवं सब्बङ्गसम्पन्नं, मुनिं दुक्खस्स पारगुं।
अनेकाकारसम्पन्नं, पयिरुपासन्ति गोतमं॥

– इस प्रकार सभी अंगों से अनेक प्रकार से संपन्न, दुःखों के पार चले गये महामुनि गौतम की उनके शिष्य उपासना कर रहे हैं।

– थेरगाथा १२५८-१२६०, वङ्गीसत्थेरगाथा

विविध प्रसंग

अनुकरणीय आदर्श

एक समय भगवान श्रावस्ती के जेतवन आराम में विहार करते थे। श्रावकों की परिषद में शास्ता ने धर्मोपदेश देते हुए यह प्रज्ञप्त किया –

यदि तुम घर से बेघर हो जाओ तो वैसा ही बनना जैसे सारिपुत्त और मोग्गल्लान।

मेरे भिक्षु श्रावकों में यही दो आदर्श माने जाते हैं।

गृहस्वामी की मुक्ति

मगध जनपद की राजधानी राजगीर का एक गृहस्वामी अपने बेटे-बहू को घर-गृहस्थी की जिम्मेदारी सौंप कर खिन्न-मन बेकार-सा पड़ा रहता। एक दिन उसने भिक्षुओं को जाते हुए बड़े ध्यान से देखा। शांत और संयत भिक्षुओं को देखकर वह उनसे बड़ा ही प्रभावित हुआ।

उसे अपने जीवन और संसार में दुःख और दोष दिखाई पड़ने लगे। वह वेळुवन की ओर, जहां भगवान विहार करते थे, चल पड़ा। रास्ते में उसे महास्थविर महामोग्गल्लान मिले।

स्थविर को वह पुण्य-पारमियों से संपन्न लगा। वार्तालाप से उन्होंने गृहस्थ के मन में धर्म-संवेग जगाया। फिर उसे भगवान के पास ले गये। गृहस्थ ने प्रव्रज्या की प्रार्थना की। तथागत ने स्थविर महामोग्गल्लान से कह कर उसे प्रव्रजित कराया। शील का पालन कर उसने आर्यसत्यों को देखना प्रारंभ किया। विपस्सना का अभ्यास करते हुए वह सोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ।

उसने साधना में तनिक भी आलस्य और प्रमाद नहीं किया। भगवान के निर्देश पर स्थविर महामोग्गल्लान उसकी देख-रेख करते थे। अपनी लगन और सतत अभ्यास के फलस्वरूप वह अर्हत हुआ। उसे सभी दुःखों से

मुक्ति मिली। पर कुछ दिनों बाद वह भयंकर रूप से बीमार हुआ। उसे चैतसिक कष्ट तो नहीं, पर शारीरिक दुःख तो होते ही थे। अर्हत अवस्था को प्राप्त साधक को मानसिक शोक नहीं होते पर कायिक कष्ट होते हैं। शरीर की संवेदनाओं को देखते हुए अनित्यबोध के आधार पर दुःखों को सहन करते हुए वह विहार करता था। समय आने पर वह निर्वाण को प्राप्त हो आवागमन के बंधन से सदा-सदा के लिए मुक्त हो गया।

अग्गिदत्त का कल्याण

अग्गिदत्त महाकोसल राज्य का पुरोहित था जो उम्र बढ़ने पर किसी अन्य मत में प्रव्रजित हो गया और लोगों को उपदेश देने लगा – "पर्वत की शरण जाओ, वन की शरण जाओ, आराम की शरण जाओ, वृक्ष की शरण जाओ और इस प्रकार सब दुःखों से छुटकारा पाओ।"

उस समय भगवान बुद्ध भी श्रावस्ती के निकट जेतवन में विहार कर रहे थे। प्रत्यूषकाल में लोक देखते हुए उन्होंने अपनी दिव्य-दृष्टि से अग्गिदत्त ब्राह्मण और उसके शिष्यों को देखा और पाया कि 'ये सभी अर्हत्व के आधार वाले हैं'।

सायंकाल भगवान ने महामोग्गल्लान थेर को कहा कि क्या तुम अग्गिदत्त ब्राह्मण को इस प्रकार जनता को अधर्म की ओर ले जाते हुए देखते रहोगे? जाओ और उनको धर्म का उपदेश दो। इस पर महामोग्गल्लान थेर ने कहा – भंते! ये संख्या में बहुत हैं। मुझ अकेले के लिए यह कार्य जटिल होगा। यदि आप आ सकें तो संभव हो पायगा। इस पर भगवान ने कहा – तुम आगे-आगे जाओ, मैं भी आऊंगा।

वहां जाने पर महामोग्गल्लान थेर को बहुत-सी कठिनाइयों में से गुजरना पड़ा। अंत में जब भगवान भी वहां आ गये तब उन्होंने अग्गिदत्त से पूछा कि तुम अपने शिष्यों को क्या उपदेश देते हो? इस पर उसने कहा – "इस पर्वत की शरण जाओ, वन, आराम, वृक्ष की शरण जाओ। इन

शरणों में जाने से सब दुःखों से मुक्त हो जाओगे। मैं इस प्रकार उपदेश देता हूं।"

इस पर शास्ता ने कहा – "इनकी शरण जाने से कोई सब दुःखों से मुक्त नहीं होता। बुद्ध, धर्म और संघ की शरण जाकर ही कोई भवचक्र से मुक्त होता है।" उसके उपरांत उन्होंने निम्नलिखित गाथाएं कहीं –

"बहुं वे सरणं यन्ति, पब्बतानि वनानि च।
आरामरुक्खचेत्यानि, मनुस्सा भयतज्जिता॥

"नेतं खो सरणं खेमं, नेतं सरणमुत्तमं।
नेतं सरणमागम्म, सब्बदुक्खा पमुच्चति॥

[अनेक मनुष्य भय के कारण पर्वत, वन, आराम, वृक्ष तथा चैत्य की शरण जाते हैं, लेकिन यह शरण क्षेमवाली नहीं होती, न ही यह उत्तम शरण है, इनकी शरण में आकर कोई सभी दुःखों से मुक्त नहीं होता।]

"यो च बुद्धञ्च धम्मञ्च, सङ्घञ्च सरणं गतो।
चत्तारि अरियसच्चानि, सम्मप्पञ्ञाय पस्सति॥

"दुक्खं दुक्खसमुप्पादं, दुक्खस्स च अतिक्कमं।
अरियं चट्ठङ्गिकं मग्गं, दुक्खूपसमगामिनं॥

"एतं खो सरणं खेमं, एतं सरणमुत्तमं।
एतं सरणमागम्म, सब्बदुक्खा पमुच्चती"ति॥

– धम्मपद १८८-१९२, बुद्धवग्ग

[जो बुद्ध, धर्म और संघ की शरण जाकर चार आर्य सत्यों – दुःख, दुःखसमुदय, दुःखनिरोध और दुःखनिरोधगामिनी पटिपदा, अर्थात आर्य-अष्टांगिक मार्ग को सम्यक प्रज्ञा से देखता है, अनुभव करता है उसके लिए यह शरण क्षेमवाली है, उत्तम है। कोई भी इनकी शरण आकर सभी दुःखों से मुक्त होता है।]

देशना के अंत में सभी श्रोताओं ने प्रतिसंभिदाओं के साथ अर्हत्व प्राप्त किया।

परिनिर्वाण-लाभ

भव-संसरण से मुक्ति

भगवान गौतम बुद्ध के बढ़ते मान-सम्मान और लाभ-सत्कार से अन्य संप्रदाय वालों को बड़ी ईर्ष्या तथा जलन होती थी। इसलिए, उनके मान-सम्मान को घटाने, समाप्त करने संबंधी उपाय वे प्रायः सोचते रहते। सम्मान-सत्कार के कारणों पर उन्होंने विचार किया, तो इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि महाश्रमण को इतना लाभ-सत्कार महामोग्गल्लान के कारण प्राप्त होता है। अपने ऋद्धिबल से महामोग्गल्लान देवलोक और निरयलोक दोनों में पहुँच जाता है। देवलोक की बातें बता कर वह जनता को सत्कर्म के लिए प्रेरित करता है और निरयलोक की बातें कह कर उन्हें दुष्कर्म करने से बचाता है। महामोग्गल्लान के इस कार्य से लोगों में गौतम बुद्ध की ख्याति दिनोंदिन बढ़ती जा रही है और इसीलिए हम लोगों का लाभ-सत्कार कम होता जा रहा है।

तब उन तैर्थिकों ने एक उपाय सोचा। अपने सेवकों को एक हज़ार स्वर्ण मुद्रायें देकर महामोग्गल्लान की हत्या के लिए प्रेरित किया। धन के लोभ में सेवकों ने यह पापकर्म करना स्वीकार कर लिया। महास्थविर महामोग्गल्लान उन दिनों कालसिला पर रहते थे। रात में वहां पहुँचकर हत्यारों ने स्थविर के निवास को घेर लिया। अपने को घिरा जानकर ऋद्धि विद्या में पारंगत महामोग्गल्लान एक छोटे-से छिद्र से कुटी के बाहर निकल गये। दूसरे दिन चोरों ने फिर आ घेरा। इस बार कुटी की छत तोड़कर ऋद्धिमान बाहर आकाश में चले गये। उस दिन भी निराश होकर हत्यारे लौट गये। इस प्रकार कई दिन लौटते रहने पर जब वे अंतिम बार आये तब अपने पूर्वजन्म के एक कर्म-विपाक के कारण आयुष्मान महामोग्गल्लान वहां से न हट सके, न अदृश्य हो सके। उनके पूर्वजन्म का एक विशेष कर्म, फल देने के लिए पूरा पक चुका था। इसलिए स्थविर महामोग्गल्लान की

ऋद्धिशक्ति दुर्बल पड़ गयी। घातकों ने थेर को पकड़कर उनकी हड्डियां तोड़ कर, चूर-चूर कर दी। फिर वे उन्हें मरा हुआ जानकर एक ओर झाड़ी में फेंक कर चले गये।

थेर यह सोच कि 'शास्ता को देखने के बाद ही परिनिर्वाण प्राप्त करूंगा' ध्यान द्वारा अपने व्यक्तित्व को अच्छी तरह समेट कर, स्थिर कर, आकाश मार्ग से शास्ता के पास जा पहुँचे। वहां पहुँच कर भगवान की वंदना की और कहा, "भंते, मैं परिनिर्वृत्त होना चाहता हूं।"

भगवान ने पूछा – "मोग्गल्लान! परिनिर्वृत्त होगे?"

"हां, भंते।"

"कहां जाकर?"

"भंते, कालसिला प्रदेश में।"

"मोग्गल्लान, मुझे धर्म कह कर जाओ। अब तुम्हारे जैसे श्रावक से मेरा दर्शन नहीं हो सकेगा।"

"ऐसा ही करूंगा, भंते!" – महामोग्गल्लान ने कहा। आयुष्मान महामोग्गल्लान ने अपना वचन निभाया और कालसिला प्रदेश में जाकर परिनिर्वाण लाभ किया।

.....

भिक्षुओं ने धर्मसभा में यह बात चलायी कि महामोग्गल्लान थेर ने अपने अनुरूप मरण प्राप्त नहीं किया। उन्होंने भगवान से भी कहा, "भंते, आयुष्मान महामोग्गल्लान की उनके अनुरूप मृत्यु नहीं हुई।"

भगवान बोले, "भिक्षुओं, महामोग्गल्लान ने एकदम अपने व्यक्तित्व के अनुरूप अभी ही मृत्यु प्राप्त नहीं की, पूर्व में भी अपने किये कर्म के फलस्वरूप ही मृत्यु प्राप्त की थी।"

फिर भिक्षुओं की जिज्ञासा शांत करने के लिए भगवान ने विस्तार से बताया; अतीत काल में महामोग्गल्लान वाराणसी के एक समृद्ध कुल में

जन्मा था। बड़ा होने पर वह बड़े प्रेम और श्रद्धा से अपने माता-पिता की सेवा करता था। घर और बाहर का प्रत्येक कार्य उसी को करना पड़ता था। उसकी परेशानी समझ कर मां-बाप ने बेटे के विवाह करने की बात सोची। पर वह तैयार नहीं हुआ। माता-पिता ने बहुत समझाया, "अकेले ही कार्य-भार से तुम थक जाते हो। बहू आ जाने पर आसानी हो जायगी।" पर बेटा यह कहते हुए नकारता रहा, "जब तक आप लोग जीवित हैं मैं अकेला ही आप लोगों की सेवा करूंगा।" फिर भी मां-बाप के बार-बार जोर देने पर उसे तैयार होना ही पड़ा। बेटे के मनोनुकूल वे लोग एक कन्या ले आये। कुछ दिनों तक बेटे-बहू बड़े ही मनोयोग से माता-पिता की सेवा करते रहे। जो कुछ वे कहते उनके मन का होता। धीरे-धीरे बहू को असुविधा होने लगी। एक दिन खिन्न होकर अपने पति से बोली, "आर्य, अब मैं तुम्हारे मां-बाप की न तो सेवा करूंगी, न उनके साथ रहूंगी।"

पति ने डांटा, "यह कैसे होगा? तुम्हें साथ रहना होगा और सेवा भी करनी होगी। इसी शर्त पर तुमसे ब्याह हुआ है।"

पत्नी शांत हो गयी। कुछ दिन इसी प्रकार बीते। अंत में उसने एक उपाय सोचा। पति के बाहर से आने पर वह माता-पिता के मनगढ़ंत दोष और उनसे होनेवाली परेशानियां दूसरे-तीसरे दिन बताने लगी। पत्नी के झूठे आरोपों का असर पति पर दीखने लगा। अब एक दिन घर में उसने जूठा अन्न और साग-पात के छिलके बिखेर दिये। बाहर से आने पर जूठन देखकर पति ने पूछा, "यह सब क्या है?"

"तुम्हारे बूढ़े और अंधे मां-बाप का करतब। बहुत दिनों से वे लोग ऐसा कर रहे हैं। मैं साफ कर दिया करती थी। सोचा आज तुम्हें भी दिखा दूं। तभी तुम्हें भी विश्वास होगा।" इस प्रकार धीरे-धीरे उसने पति के मन को भी दूषित कर दिया। लाचार होकर एक दिन उसने पत्नी से पूछा, "आखिर किया क्या जाय?"

अब उसे उकसाने का पत्नी को अच्छा अवसर मिला। उसके द्वारा सुझाये गये उपाय के अनुसार बेटे ने माता-पिता को अच्छी तरह

खिला-पिला कर कहा, "आपके रिश्तेदार आपलोगों से मिलने के लिए एक जगह प्रतीक्षा कर रहे हैं। अभी आपलोगों को वहां ले चलूंगा।" ऐसा कह कर उन्हें बैलगाड़ी पर बैठाकर जंगल की ओर चल पड़ा। जंगल के बीच पहुँचकर चोरों का बहाना बनाकर अपनी गाड़ी से उतर गया और पिता को बैलों की डोरी थमा दी। थोड़ा आगे जाने पर अपना स्वर बदल कर चोर-चोर का हल्ला करते हुए अपने अंधे मां-बाप को पीटने लगा। चोर आने का शोर सुनकर पिता बोला, "बेटे, तुम भागकर अपनी रक्षा करो। हमलोग तो बूढ़े हो गये हैं। मर जायेंगे तो भी कोई बात नहीं।"

माता-पिता के ऐसे भाव की अवहेलना करते हुए पत्नी के वशीभूत बेटे ने उन्हें बुरी तरह कूट-पीट कर जंगल में फेंक दिया।

"इस कर्म के फलस्वरूप महामोग्गल्लान लंबे समय तक नरक में तपता रहा। उस कर्म के शेष विपाक के कारण इस जन्म में चोरों द्वारा मारा जाकर मृत्यु को प्राप्त हुआ है। जो प्रदुष्ट नहीं है उस पर क्रोध करने वाला, द्वेष करनेवाला दस कारणों से दुर्भाग्य प्राप्त करता है। ऐसा कह मेल बैठा धर्म कहते हुए ये गाथाएं कहीं।

यो दण्डेन अदण्डेसु, अप्पदुट्ठेसु दुस्सति।
दसन्नमञ्ञतरं ठानं, खिप्पमेव निगच्छति॥

वेदनं फरुसं जानिं, सरीरस्स च भेदनं।
गरुकं वापि आबाधं, चित्तक्खेपञ्च पापुणे॥

राजतो वा उपसग्गं, अब्भक्खानञ्च दारुणं।
परिक्खयञ्च ञातीनं, भोगानञ्च पभङ्गुरं॥

अथ वास्स अगारानि, अग्गि डहति पावको।
कायस्स भेदा दुप्पञ्ञो, निरयं सोपपज्जति॥

–धम्मपद १३७-१४०, दण्डवग्ग

["जो दंडरहितों (क्षीणास्रवों) को दंड देता है या निर्दोषों के सिर पर दोष मढ़ता है, उसे इन दस बातों में से कोई एक बात शीघ्र ही होती है। तीव्र

वेदना, हानि, अंगभंग, बड़ा रोग, चित्तविक्षेप, राजदंड, कड़ी निंदा, संबंधियों का विनाश, भोगों का क्षय अथवा उसके घर को आग जला डालती है। शरीर छूटने पर वह दुष्प्रज्ञ नरक में उत्पन्न होता है।"]

भविष्यवाणी का प्रतिफल

अपने अनेक पूर्वजन्मों में किये गये पुण्य कर्मों के फलस्वरूप आयुष्मान मोग्गल्लान अपने किसी पिछले जन्म में भगवान अनोमदस्सी के शासनकाल में वाराणसी के एक समृद्ध परिवार में पैदा हुए थे। उन्हीं दिनों हिमालय की ओर से, लोगों पर अनुग्रहपूर्वक, यात्रा करते हुए भगवान अनोमदस्सी वाराणसी पधारे। उनके साथ भिक्षु-संघ में हजारों क्षीणास्रव थे। उसी जन्म में अपने एक मित्र की प्रेरणा से मोग्गल्लान शास्ता के पास आये। उनसे उपदेश ग्रहण कर भिक्षु-संघ सहित भगवान अनोमदस्सी को दूसरे दिन के लिए भोजन पर आमंत्रित किया।

बड़ी ही श्रद्धा-भक्ति के साथ गृहपति मोग्गल्लान ने भगवान और संघ को अपने हाथों परोस कर भोजन कराया। गृहपति के परोसे खाद्य-पदार्थ और पेय से संतुष्ट भगवान ने उसका अनुमोदन किया। अपने चित्त द्वारा उसके चित्त के भावों को जानकर उसकी प्रशंसा करते हुए भगवान ने कहा, "आज से अपरिमेय कल्पों बाद जब ओक्काक कुल में गोत्र से गौतम नामक बुद्ध संसार में उत्पन्न होंगे तब यह ब्राह्मण कुल में जन्म ग्रहण करेगा। अपने कुशल कर्मों से प्रेरित हो यह गौतम बुद्ध का द्वितीय अग्रश्रावक होगा। यह अति श्रमशील, दृढ़ संकल्पवान तथा महान ऋद्धिशाली होगा। सभी आस्रवों को अच्छी तरह जानकर यह अनास्रव हो निर्वाण को प्राप्त होगा।"

बुद्ध को कोई शोक नहीं

एक समय आयुष्मान सारिपुत्त और आयुष्मान महामोग्गल्लान के परिनिर्वाण-लाभ के कुछ दिन बाद ही वज्जी जनपद में गंगा नदी के तीर पर उक्काचेल में भगवान एक बड़े भिक्षु-संघ के साथ विहार कर रहे थे।

उस समय भगवान भिक्षु-संघ से घिरे हुए एक खुले स्थान में विराजमान थे। तब भगवान ने शांत बैठे भिक्षु-संघ को निहारते हुए यह कहा –

"भिक्षुओ! यह भिक्षुमंडली सूनी-सूनी सी लग रही है। सारिपुत्त और मोग्गल्लान के निर्वाण प्राप्त कर लेने के बाद यह मंडली सूनी-सी हो गयी है। जिस ओर सारिपुत्त और मोग्गल्लान रहते थे उस ओर यह भरा-भरा सा मालूम होता था।

"भिक्षुओ! अतीत काल में जो भी भगवान अर्हत सम्यक संबुद्ध हुए थे, उनके भी ऐसे ही दो अग्रश्रावक हुआ करते थे। भविष्य में जो भगवान अर्हत सम्यक संबुद्ध होंगे उनके भी ऐसे ही दो अग्रश्रावक हुआ करेंगे - जैसे मेरे थे सारिपुत्त और महामोग्गल्लान।

"भिक्षुओ! श्रावकों के लिए यह आश्चर्यकर है कि आने वाले अग्रश्रावक भी अपने शास्ता के शासनकर एवं आज्ञाकारी और चारों परिषदों के लिए प्रिय, गौरवनीय तथा श्रद्धाभाजन हुआ करेंगे। तथागत के लिए भी आश्चर्यकर है कि ऐसे दोनों अग्रश्रावकों के परिनिर्वाण पा लेने पर भी बुद्ध को न तो कोई दुःख है, न शोक, न संताप। जो कुछ भी उत्पन्न हुआ है, संस्कृत है, निर्मित है, वह व्यय, विनाश और भंगुर स्वभाव का ही है। वह नष्ट न हो, यह संभव नहीं है।"

देहधातु

सम्राट अशोक के शासनकाल से ही मध्यप्रदेश में स्थित सांची धर्मकार्य का प्रमुख केंद्र रहा है। यहां एक सौ फुट व्यास का, पचास फुट ऊंचा विशाल स्तूप उस समय से आज तक विद्यमान है। इसके चारों प्रमुख द्वारों पर जातक कथाओं और बुद्ध के जीवनकाल की घटनाओं की नक्काशी की गई है। इस स्तूप में भगवान बुद्ध के अग्रश्रावकों सारिपुत्त और महामोग्गल्लान की देहधातु स्थापित है।

परिशिष्ट

आयुष्मान महामोग्गल्लान की कतिपय गाथाएं

(१)

आरञ्ञिका पिण्डपातिका, उञ्छापत्तागते रता।
दालेमु मच्चुनो सेनं, अज्झत्तं सुसमाहिता॥

– अरण्यवास करते हुए, भिक्षा से जीविका प्राप्त करते हुए, जो भी भिक्षा-पात्र में मिल जाय उसी से संतुष्ट होकर हम लोग भीतर से अच्छी तरह समाहित होकर मृत्यु की सेना को फाड़ डालें।

(२)

आरञ्ञिका पिण्डपातिका, उञ्छापत्तागते रता।
धुनाम मच्चुनो सेनं, नळागारंव कुञ्जरो॥

– अरण्यवास करते हुए, भिक्षा से जीविका प्राप्त करते हुए, जो भी भिक्षा-पात्र में मिल जाय उसी से संतुष्ट होकर हम लोग मृत्यु की सेना को वैसे ही धुन दें, जैसे हाथी सरकंडे से बनी कुटी को नष्ट कर (गिरा) देता है।

.....

(३)

"सत्तिया विय ओमट्ठो, डय्हमानोव मत्थके।
कामरागप्पहानाय, सतो भिक्खु परिव्वजे॥

– भिक्षु को यह सोचते हुए विचरण करना चाहिए कि वह बर्छी से घायल है और उसके सिर पर आग रखी है। उसे बराबर स्मृतिमान होकर काम राग का प्रहाण करना चाहिए।

(४)

"सत्तिया विय ओमट्ठो, डय्हमानोव मत्थके।
भवरागप्पहानाय, सतो भिक्खु परिव्वजे॥

– वह बर्छी से घायल है, उसके सिर पर आग धधक रही है – ऐसा ही सोचते हुए भिक्षु को विचरण करना चाहिए। बराबर स्मृतिमान रहकर भवराग का प्रहाण करना चाहिए।

.....

(५)

"अनिच्चा वत सङ्खारा, उप्पादवयधम्मिनो।
उप्पज्जित्वा निरुज्झन्ति, तेसं वूपसमो सुखो॥

– सचमुच सारे संस्कार अनित्य हैं, वे उत्पत्ति और विनाश स्वभाव वाले हैं। वे उत्पन्न हो-होकर निरुद्ध हो जाते हैं। इनका नितांत उपशमन ही वास्तविक 'सुख' है।

(६)

"पूजितो नरदेवेन, उप्पन्नो मरणाभिभू।
पुण्डरीकंव तोयेन, सङ्खारेनुपलिप्पति॥

– मनुष्य तथा देव से पूजित, मृत्यु को जीतने के लिए उत्पन्न वे (मोग्गल्लान) संस्कारों से वैसे ही अनछुए, अनुपलिप्त हैं जैसे कमल जल से अनुपलिप्त रहता है।

.....

(७)

यस्स चत्थाय पब्बजितो, अगारस्मानगारियं।
सो मे अत्थो अनुप्पत्तो, सब्बसंयोजनक्खयो॥

– मैंने जिस उद्देश्य से प्रव्रज्या ली थी और घर छोड़कर बेघर हुआ था, उस उद्देश्य की प्राप्ति मुझे हो गयी है और मैंने सभी संयोजनों को काट डाला है॥

.....

(८)

न वे अग्गि चेतयति, अहं बालं डहामीति।
बालोव जलितं अग्गिं, आसज्ज नं पडय्हति॥

– निश्चय ही अग्नि यह नहीं सोचती कि मैं मूर्ख को जलाऊंगी, लेकिन मूर्ख जब आग को छेड़ता है, उसका विरोध करता है तो वह जल ही जाता है॥

(९)

एवमेव तुवं मार, आसज्ज नं तथागतं।
सयं डहिस्ससि अत्तानं, बालो अग्गिंव सम्फुसं॥

– इसी प्रकार, हे मार! चूंकि तुमने तथागत का विरोध किया है, उनकी बेइज्जती की है, तुम अपने को वैसे ही जलाओगे जैसे मूर्ख आग छूकर जलता है॥

.....

(१०)

"अपुञ्ञं पसवी मारो, आसज्ज नं तथागतं।
किं नु मञ्ञसि पापिम, न मे पापं विपच्चति॥

– तथागत का विरोध कर, उनका अनादर कर मार ने अपुण्य कमाया है। "पापी, तुम क्या सोचते हो कि 'मेरे पाप का विपाक नहीं होगा।"

(११)

"करतो ते चीयते पापं, चिररत्ताय अन्तक।
मार निब्बिन्द बुद्धम्हा, आसं माकासि भिक्खुसु॥

– हे अंतक, तुमने दीर्घकाल से अपुण्य कर्मों को संग्रह कर रखा है। तुम बुद्ध से दूर रहो, अर्थात बुद्ध को तंग करने की चेष्टा मत करो और भिक्षुओं में कोई आशा न रखो।

(१२)

"इति मारं अतज्जेसि, भिक्खु भेसकळावने।
ततो सो दुम्मनो यक्खो, तत्थेवन्तरधायथा"ति॥

– इस तरह भिक्षु ने भेसकला वन में मार को धमकाया। तब वह यक्ष उदास होकर वहां से अंतर्धान हो गया।

– थेरगाथा - ११४९-५०, ११७१-७२, ११६८, ११८९, ११९५, १२१३-१७, महामोग्गल्लानत्थेरगाथा

.....